

UNIVERSAL
LIBRARY

OU 180199

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83-1/SCIE Accession No. H2711

Author सिंह, आरसीप्रसाद ।

Title एक पक्षी नाम । 1945

This book should be returned on or before the date last marked below.

OS १५५ UNIVERSITY I

श्रीआरसीप्रसादसिंह

तारामण्डल

मुजफ्फरपुर

प्रकाशक—

युगलकिशोरभा

तारामण्डल

मुजफ्फरपुर

Checked 1965

मूल्य—२।)

जुलाई १९४५

Checked 1969



मुद्रक—

श्री बीरबल सिंह

ए० बोस प्रेस,

मोतीझील, मुजफ्फरपुर ।

मेहमानदारी



“एक प्याला चाय” लेकर उपस्थित हुआ हूँ। ऊपर से एक लम्बा चौड़ा वक्रव्यू दे डालूँ, मेरे लिए संभव नहीं, शोभन भी नहीं। इससे आपका मनोरंजन होगा, ताज़गी मिलेगी, सारी दुनिया की गंभीर समस्याएँ हँसी-हँसी में लघुगति आपके पास आकर मस्तिष्क को एक ठेस दे जायँगी, क्या क्या होगा, आप स्वयं देखेंगे। मैं यह नहीं दावा करता कि मैं सफलतापूर्वक आपका आतिथ्य कर सकूँगा, पर इतना निवेदन अवश्य करूँगा कि आपके योग्य ‘पीको’ लाने की चेष्टा रही है, चाहे मेरी अकुशलता ने उसमें पूरा रंग भले ही न आने दिया हो, चाहे मेरी गरीबी ने इसे सस्ते प्याले में ही परोसा क्यों न हो।

जो हो।

श्रीआरसीप्रसादसिंह जी आपके परिचित हैं। मैं उनके विषय में आपसे कुछ निवेदन करने की श्रुति कर अपनी हँसी नहीं कराना चाहता। मेरे पास, ‘आखिर आप कौन हैं?’ का जवाब सिवा सिर नीचा कर लेने के और क्या होगा। कवि आरसी की ‘कलापी’ ‘आरसी’ ‘नयीदिशा’ ‘पाँचजन्य’ आदि रचनाएँ आपकी जानी-पहचानी हैं। जभी तभी यह

कविताएँ ही बाँध तोड़ कर बहने लगी हैं, तो कवि ने उन्हें कहानियों में समेट लिया किया है। ‘खोटा सिक्का’ ‘पंचपल्लव’ ‘कालरात्रि’ ‘आँधी के पत्ते’ आदि संग्रहों में आप कवि को एक नए रूप में देखेंगे। कहानीकार आरसीजी हमारे समाज और व्यक्ति के भीतर-बाहर के कठिन-कोमल उलझी-बुलझी समस्याओं को किस तरह देखते हैं, क्या समाधान देते हैं, ठाती मान्यताओं को आखिरी चोट देने में यह कहानियाँ कहाँ तक सफल हुई हैं, उनकी आवाज कितनी बुलन्द है, इसपर तूल देकर लिखना मेरा नहीं, समालोचक का काम है। मैं उस ओर संकेत मात्र कर रहा हूँ। और जब ‘दार्शनिक आरसी, दर्शनी ‘आरसी’ होकर सामने आते हैं,

मैं “एक प्याला चाय” लेकर आपलोगों के सामने उपस्थित हुआ हूँ, कि जिसे माध्यम बनाकर उनके इस नए रूप का परिचय करें।

—‘प्रकाशक’

विषय-सूची

सं०			पृष्ठ
१	एक प्याला चाय	...	१
२	रहस्यमयी	...	१९
३	प्रेम का अनुभव	...	४६
४	मरम्मत	...	६०
५	अभिनेत्री	...	८३
६	तीन हजार हवाई जहाज	...	९४
७	मित्र की पत्नी		१०२
८	खेत का धूर	...	११६
९	कल्पिता	...	१२६
१०	ना छोड़ो सैंया	...	१४३
११	मतभेद	...	१६०
१२	गधा	...	१७०



एक प्याला चाय

कालेज के ग्रीन-रूम में आकर विनोद बड़बसास-सा एक बेंचपर गिर पड़ा। कित्तों कुड़ नीचे आ गयीं और कुछ इधर-उधर बिखर गयीं। और, विनोद, बच्चों-सा झुमने लगा।

सीसरा बण्टा बल रहा था। अंग्रेजी-क्लास से प्रो० मित्राका और बर्जस स्पष्ट सुनाई पड़ रहा था।

विनोद क्लास से भाग कर आया था। आज न जाने क्यों, उसका पढ़ने में मन नहीं लगा और हाजिरी देकर वह चुपचाप प्रोफेसर की आंखें बचाकर क्लास से निरुल भागा।

कालेज में यह एक साधारण बात है। जहाँ एक-एक क्लास में तीन-तीन सौ लड़के हों, वहाँ किसी एक लड़के का गायब हो जाना वैसी ही बात है, जैसे पतझड़ के महीने में पीपल के पेड़ से एक पीछे पत्ते का धरती पर गिर पड़ना !

और प्रो० मित्रा से आंखें बचा लेना तो बायें हाथ का खेल है। उनके बीस लड़के-लड़कियाँ हैं; और प्रत्येक शाम को जब सभी लड़के-

कड़कियाँ बाहर से खेल-कूद कर आते हैं, वे एक-एक कर उन्हें गिनते हैं—शायद कोई खो न जाय ! और, जांग तो यह भी कहते हैं कि नाम और चेहरा तो उन्होंने शायद ही किसीका पहचाना हो—सिर्फ, नम्बर से काम लेते हैं. और जहाँ एक भी घटा कि हल्ला मचा !

ऐसे प्रो० मित्रा को आँखों में धूल झोंकना कौन-सी बड़ी बात है ! सो, उयोंही विनोद होल से बाहर निकला कि नीरद ने देख लिया । नीरद उसका सहपाठी है, और एक अन्तरङ्ग मित्र भी । दोनों में काफी घनिष्टता है, और दोनों एक-दूसरे को प्यार भी खूब करते हैं ।

नीरद ने विनोद को होल से निकलते देखा और समझ गया, आज मामला कुछ बेटब है ! वह भी चुपके-से उठा और दबे-पाँव विनोद का पीछा किया ।

जब विनोद ग्रोन-रूम में आकर बेंच पर धम्म से लद गया, तब वह भी उसके पास हाँ बैठकर विनोद की हरकतों को गौर से देखने लगा ।

नीरद को देखकर विनोद चौंका । वह चाहता था एकान्त, पूर्ण एकान्त । किन्तु, यहाँ देखा, तो नीरद ! और वक्त होता, तो नीरद की उपस्थिति से विनोद को आनन्द ही होता; परन्तु आज वह एकान्त की खोज में था—भकेला रहना चाहता था ।

नीरद विनोद के मनोभाव ताड़ गया ।

“मेरा रहना ठीक नहीं, विनोद ।”—नीरद ने कहा—“कहो तो मैं चला जाऊँ !”

“नहीं !” विनोद झेंग मिटाकर बोला—“बैठो ।”

“तबियत तो दुरुस्त है न ?”

“जरा नाड़ी पर हाथ रख कर देखो !”

“मैं पूछता हूँ, मिजाज कैसा है ?”

“मेरा सर छुओ, आप ही पता चल जायगा ।”

“अरे, मैंने कहा ?” नीरद अभीर होकर बोला—“तुम झलक के

क्यों चले आये ? किसी तरह की तरुणीफ तो नहीं है ?”

“तनिक मेरी छाती पर हाथ रखो—” “ठफ, कितनी जलन है !”

“वेवकूफ !” नीरद ने हँसकर कहा—“मैं पूछता हूँ भाम, और तुम जबाब देते हो हमली ! लाभो इधर हाथ, नब्ज तो देखूँ !”

विनोद ने दाहिना हाथ बढ़ा दिया ।

नीरद खिजखिजाकर हँस पड़ा—“भरे, तुम्हें कुछ भी तो नहीं है !...कैसा बढ़िया शरीर है !”

“नहीं, जी !” विनोद बोला—“बुखार-सा लगता है; ठीक से देखो ।”

“धत् !” नीरद ने कहा—“तुम्हें वहम है ।”

“फिर मिजाज क्यों गड़बड़ है ?”

“कहूँ ?...नीरद ने मुस्कराने की चेष्टा करते हुए कहा—“कहूँ ? ... मैं बतलाऊँ ?”

“हाँ, हाँ—कहो !”

“तुम्हें प्रेमका रोग हो गया है !”

नीरद ने विनोद के गाल पर एक हल्की चपत लगाकर कहा—“प्रेमका रोग ‘समझे, जनाब ?’ और हँसने लगा ।

विनोद को मालूम हुआ, जैसे पकड़ गया । उसने भयभीत होकर कहा—“नहीं, नहीं; नीरद !...तुम्हें किसने कहा ?”

“मुझे सब पता है” नीरद बोला—“दरो मत । दुनियाँ में ऐसा कौन पेड़ है, जिसमें हवा न बगी हो !”

“और, संसार का ऐसा कौन युवक है, जिसे एक बार प्रेमका रोग न हुआ हो ?” विनोद ने साहस किया—“क्यों ?”

“बेशक !”—नीरद बोला ।

मार्च का महीना शेष हो रहा था । भूप में तीखावन आ गया था । ग्रीन-रूम बेहद ठंडा था । तीसरा घण्टा खत्म हो गया । वहाँ खदकों की भीड़ क्रमशः बढ़ने लगी । कोलाहल शुरू हुआ ।

विनोद और नारद उठ कर पुस्तकालय की तरफ चले गये ।

X X X X X

मि० मजूमदार कालेज-भर में अपने ढंग के एक ही मजेदार आदमी थे—बड़े ही हँसांड, बड़े-ही हँसमुख । जब लड़कों से बातें करते, तब ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि प्रोफेसर हैं । जब-तब मजाक भी कर देते और, मजाक भी ऐसा कि लड़के चकित हो जाते ! दर्शन-शास्त्र के हेड आफ-दि-डिपार्टमेंट 'बातूनी' भी एक नम्बर के ! "चुटकियाँ लेने में उस्ताद हैं । सुरत-शकु निहायत अच्छी " मगर, दिल्लगी करते वक्त चेहरा ऐसा बनते कि लड़के हँसते-हँसते कोटन-कबूतर बन जाते !

और, लड़कों में विनोद, प्रथम श्रेणी का रसिक, सौन्दर्य प्रिय और प्रेमी और, 'स्मार्ट', आतंक का सम्भार के शब्दों में । क्या मजाल कि सरका एक बाल भी झुंघर न होकर उधर रहे ! कोटका काफ़ी जरा-सा सिकुड़ा होता, या कमीज तनिक भी कहीं से मुड़ी होती, तो वह बेचैन हो जाता । जूते, टोपा, पाजामा कोई भी बेतरतीब नहीं; एक हिसाब से एक अंदा से एक अन्दाज से । और ऐसा जो है, वही है विनोद !

विनोद होस्टल में रहता था । उसका अपना एक Single-seated रूम था । और उस रूम में अकेला वह कभी बांसुरी बजाता, कभी एडगर वेल्लेसका 'नावेन' पढ़ता और कभी 'इलस्ट्रेटेड वांकली' के पन्ने उलटता । बर्फ पर स्लेज की पत्तियों का तरङ्ग दिन फिसलते बले जा रहे थे ।

विनोद ने अपनी कोठरी में तमाम तरह-तरह की तस्वीरें लटका दी थीं । मि० मजूमदार उसे बहुत प्यार करते थे और जब-जब उसके कमरे में आते, तब-तब उन तस्वीरों का तारफ़ के पुल बांध देते । विनोद खुश हो जाता ।

"सर, ...सर !" विनोद उत्साहपूर्वक कहता—“वह देखिये उस ली को, कमल-धे नेत्र, प्रियतम का स्मृति में सजल हो उठे हैं...और

वह ग्राम वधू.....कितनी सज्ज, कटि पर पानी का घड़ा छलक रहा है ! ”

“और उसी तरह उसका यौवन भी—” मि० मजूमदार ने हँसकर कहा—“क्यों ?”

विनोद लज्जित हो जाता—और सर ! वह लड़की कितनी खूबसूरत है .. अलहद, मुग्ध ”

“और, तुम स्वयं क्या कम खूबसूरत हो ?”

“आप तो मुझे ही ” कहते-कहते विनोद रुक जाता और, मि० मजूमदार चले जाते --“सचमुच तुम्हारी तस्वीरें बहुत ही खूबसूरत हैं, विनोद !”

X X X X X

. तीन तरफ होस्टल की ऊंची आर्लीशान इमारतें और एक होस्टल-सुपरिन्टेण्डेंट मि० मजूमदार का कार्टर छोटा-सा पर खूबसूरत बंगला, नाना-प्रकार की लतावेनियों से सजा हुआ.. देहलीज पर फूलों के सुन्दर अपराजिताका मन-मोहक गेट मि० मजूमदार की कलाप्रियता और सौन्दर्योपासना का एक उदाहरण था ।

और, उस खूबसूरत बगले में जो एक सबसे खूबसूरत चोज थी, उसका नाम .. उसका नाम था मिस चपला मजूमदार !

और विनोद पागल विनोद प्रेमी विनोद देखता कि सुबह के वक्त, शाम के वक्त और दोपहर के वक्त, और रात के वक्त ... कभी वह छत पर आकर अपने काले—लम्बे घुंघरूले केशों को फैला देती .. कभी दाजान में ‘ईज-चेयर’ पर नख से शिख तक जहरा कर लेटी रहती .. कभी आँगन में छोटे बड़े भाई-बहनों के साथ उछलती फिरती... और, कभी दीपक के मन्द प्रकाश में, खिड़की से, छुले आसमान की ओर एकटक निहारा करता

विनोद अपनी कांठरी के खुले वातायन से यह दृश्य देखता, .. एक अद्भुत कौतुक से .. एक अपूर्व उल्लास से, ... एक अननुभूत बेचना

से, ... और उसका मन-मयूर नाचने लगता ।

रात के गम्भीर सन्नाटे में विनोद सोया होता, ... मि० मजूमदार के बगीचे से पूर्ण-विकसित कामिनी का एक सुरभित झोंका आता और उसके साथ ही किसी बालिका का कोमल कण्ठ, ... हवा से अठखेलियां करती हुई मोहक स्वर-लहरी ... उसके कमरे में गूँज उठती और हार-मोनियम के पर्दे पर एक सुमधुर गंत-ध्वनि फूट पड़ती 'आमारे भाला बेसे, आमारे जाह्या' ... सुयेछे कतो व्यथा वेदना अपमान ... आमारे भाला बेसे' ... और, उसी क्षण विनोद की नींद टूट जाती !

और, वह बेचैनी कमरे में इधर-उधर चक्कर देने लगता

वह "मिस चपला मजूमदार" "मिस मजूमदार नहीं, नहीं, मिस मजेदार" "मजेदार

चैत की चाँदनी, किसी गोरी रमणी के शरीर-सी उज्ज्वल वसन्त की मठी हवा ... उर्दीपक ... विनोद के रोम-रोम में कोई झूला झूलने लगता ..."

और, वह जैसे स्वप्न में मि० मजूमदार के बंगले के नजदीक पहुँच जाता । ... सहसा, जैसे आँधी आता; और उसे उड़ाकर पुनः अपने कमरे में पटक देता ... वह मुमूर्षु-सा अपने बिछावन पर तड़पने लगता ...

सुबह होते ही नीरद से मुलाकात होती । नीरद का चेहरा उदास, मन सुप्त, आत्म-गंजानि और क्षोभ से विषण्ण ।

"मजे में तो ?" नीरद पूछता ।

विनोद एक फाँकी हँसा हँस देता । और नीरद गाने लगता ---
"अब मैंने जाना है अब मैंने जाना है जाना है है "

विनोद उसकी तरफ एकटक देखता रह जाता ।

× × × × ×

फिर वही ग्रीन-रूम, ... मई का पहला सप्ताह ... तोखी धूप और वहाँ पर ठण्ठी-ठण्ठी बगार ... ।

"तुम घर चले जाओ, विनोद !" नीरद ने कहा ।

“घर पर ऐसा कौन आकर्षण है, जो वहाँ जाऊँ ?”

“तो, पहाड़ पर चले जाओ !”

“पैसे ?”

“अरे, पैसे !” नीरद ने कहा—“मैं देखता हूँ, तुम्हारा स्वास्थ्य नष्ट हो रहा है। जान बचेगी, तो लाखों भिजेंगे.....कहाँ जाओ मगर जरूर !”

“आखिर, तुम्हारा मतलब क्या है ?”

“मतलब ?”—नीरद चमक कर बोला—“अरे, विनोद...मिस मजेंदार तुम्हें मार डालेगा।...मार डाला,.... मार डाला,.... मार डाला रे ..”

विनोद चौंक पड़ा—“नीरद, मुझे एक व्यूशन दिना दो।”

“कहाँ ?” नीरद बोला—“मिस मजेंदार को पढ़ाओ !”

“हाँ।” विनोद ने ईमानदारी से कहा। नीरद ने देखा, उसके कथन में सच्चाई का भरपूर हिस्सा था। वह घबरा गया। फिर भी बोला—“अच्छा, पढ़ाओ क्या ?”

“इतिहास, साहित्य, गणित, कविता जा भी पढ़ना चाहेंगी वह मैं पढ़ाऊंगा।”

“और, वात्सायनका कामसूत्र ?”

“तुम मजा करते हो और मैं गम्भीरतापूर्वक कह रहा हूँ।”

“क्या सच ?”

“इसमें भी तुम्हें सन्देह है ?”

“वाह !” नीरद बोला—“ठीक है... तो, मि० मजूमदार से कहूँ ?...ना, तुम्हीं कहो, तुमको वह मानते भी बहुत हैं !”

“ना, तुम्हीं कहो !...मैं तो कैण्डिडेट ही ठहरा। तुम्हारा कहना जरा ज्यादा ठीक रहेगा।”

“ना, भाई ! तुम्हीं कहो !”

और, अन्त में काफी बहस के बाद यह तय किया कि वह सब

वातें फिजून हैं। कहने की देर नहीं कि मि० मजूमदार भड़क जायेंगे और तब होस्टल में रहना या परीक्षा पास करना भी मुश्किल हो जायगा।

× × × × ×

मगर जिसके दिल में आग लगी होता है, वही जानता है कि इतक क्या बला है !

चपला चपला विनोद चपला की पूजा करेगा, वह उसके हृदय की अधिष्ठात्री देवी है, मानस-मन्दिर की सुन्दर प्रतिमा है। क्या वह अपने देवता के दर्शन से भी वंचित रहेगा ?

नहीं; विनोद भूखों रह सकता है, प्यासों दिन बिता सकता है; मगर, चपला के देखे बिना उसका जीना कठिन है। उसे दिन में कम-से-कम एकबार अपनी प्रेमिका का दर्शन अवश्य चाहिये।

विनोद ने देखा, मि० मजूमदार का दैनिक कार्यक्रम क्या है। पहला घण्टा—लीजर; दूसरा घण्टा फोर्थ-ईयर क्लास; तीसरा जोअर; चौथा—सेकेण्ड ईयर लौजिक। विनोद ब्लैक-बोर्ड पर चिपके, मि० मजूमदार की रूटीन को पढ़ने लगा।

क्लास... क्लास... उसने जिस लिया. कब, किस दिन, कितने बजे से उनका 'क्लास' होता है और एक तरह से निश्चिन्त हो गया।

“कोई है ?” ठाक वक्त पर विनोद प्राफेसर मजूमदार के बंगले पर पहुँच गया। दूर से ही उसने सुन लिया था, प्राफेसर मजूमदार सेकेण्ड ईयर क्लास में जार-जार से लौजिक पढ़ा रहे थे—राम अन्धा है... प्रेम अन्धा है... इसलिये राम प्रेम है !”

और, जब विनोद को पूर्ण विश्वास हो गया कि अभी प्राफेसर मजूमदार बंगले पर आने को नहीं, तब वह बिल्ली की तरह चक्कर काट-कर उनके बंगले पर पहुँचा और धीरे से पुकारा—“कोई है ?”

और, इस तरह आने और पुकारने का जो मतलब था, विनोद को अदृष्ट था... वही हुआ। उसने देखा, चकित होकर सुना... चक

का बर्दा उठाकर मिस मजेदार झमती हुई आयी और बोली—“कौन ?
आप कौन ? ”

सुशी .. सुशी .. तमाम दुनिया में सुशी... विनोद की प्रसन्नता
असीम .. विनोद का आनन्द अपार .. वह इर्ष के पारावार में निमग्न हो
हूबने-उतराने लगा ।

चपला सामने खड़ी ! .. कितना लावण्य ... अङ्गप्रत्यङ्ग से सौन्दर्य
फूटा पड़ता है .. यौवन-श्री .. पीठ पर लड़गते बाल ... मृणाल-सी कटि
... परिपुष्ट वक्ष ... विनोद का आँखें झिलमिलाने लगीं । उसका कण्ठ
व्याकुल हो गया ।

वह क्या जवाब दे ?—क्या जवाब दे ?

अरे, उसका कण्ठ कुण्ठित हो गया ? आवाज क्यों नहीं
निकलती ? वह आश्चर्य मुद्रा से, अपञ्चक नयनों से, चपला की मुख-
आका रस-पान करने लगा ।

“आपका नाम क्या है ?” किसी के कोमल कण्ठ से फिर स्वर-
कहरी बह चली । और उसने इस बार अत्यन्त साहस से कहा—“मेरा
नाम विनोद .. विनोद कुमार मैं प्राफेसर साहब को खोजने
आया था ।”

“कौन-सा काम है ?” वह मधुर-स्वर में बोली—“कोई जरूरी
काम हो तो कहिये, मैं उनसे कह दूंगी !”

काम ? .. काम कौन-सा बतलाऊँ ? चपला .. चपला, तुम्हें क्या
माझूम कि विनोद को तुम्हारे सिखा और किसी से कुछ काम नहीं ! ...
मि० मन्मथद्वार तो एक बहाना हैं । मतलब तो तुमसे है .. ओ, चपले !
तुम कब इसे सम्मोगा !

“कहिये, कौन-सा काम है ?”

“मुझे घर जाना था—” शांति में विनोद के मुँह से निकल
पड़ा .. “हाँ, मुझे घर जाना था । .. जरूरी है । सुट्टी केना है ।”

“Application (प्रार्थनापत्र) लाये हैं ?” वह बोली—

“बाये हों, तो दाजिये !”

Application !.....वह घबरा गया। बात बनाने का उतना अभ्यास नहीं। और, मालूम भी नहीं था कि वह छोकड़ी इतनी जिरह करेगी.....कुछ तैयारी भी नहीं कर ली पहले से। विनोद सोच में पड़ गया।

“नहीं, Application तो नहीं लाया। सोचा, जवानी ही कह दूँगा !”

तो जाइये, किसी दूसरे वक्त आइयेगा ! अभी तो वह क्लास में होंगे। मैं जाता हूँ।” देखते-देखते वह चली गयी। नहीं ठहरी..... ठहरी नहीं ! मैं जाता हूँ.....और, वह चली गयी। विनोद के कलेजे पर सौ मन का पत्थर पड़ गया। जबतक वह उसके आगे रही उससे बातचीत करती रही, कितना अच्छा मालूम पड़ता था ! मगर, उसके चले जाने के बाद.....अन्धेरा.....सूना, यह कमरा मानो उसे काट खायगा !

और वह चिक का पर्दा जरा-चरा-सा हिल रहा है.....हिल क्यों रहा है ?.....क्या वह पर्दे की आड़ से मुझे देख रही है.....देख रही है क्यों ?

जा तो करता है, एक बार फिर उसे बुलाऊँ कैसे ? वह क्या समझेगी ?.....क्या समझेगी वह ? आयाग, लम्पट मेरा बहाँ ठहरना अब उचित नहीं। मैं जाना चाहता हूँ मैं जाऊँगा।

विनोद ने देखा, पर्दा तब भी हिल रहा था। और वह मन मारकर चल पड़ा। मुश्किल से दरवाजे पर पहुँचा होगा कि पाँछे से किसी के छींकने की आवाज आयी। उसने धूमकर देखा, कहीं कोई नहीं, लेकिन यह आवाज उसके सिवा दूसरे का हो नहीं सकती।

तो, क्या यह वही थी ?

X X X X X

उसके दूसरे दिन, विनोद फिर प्रोफेसर साहब के बंगले पर

पहुँचा और पुकारा — “कोई है ?”

एक लड़की भीतर से बोली—“क्या है ?” और, वह लड़की निस्सन्देह चपला था।

विनोद ने कहा — “काम है।” इधर तो आइये।”

“जग टहरिये। तबतक वहीं उसी कुर्सी पर बैठिये। मैं अभी आया।”

विनोद मन हा मन एक अप्रत्याशित उद्दीपन से पुलकित हो रहा था। पाँच मिनट बँते होंगे, चपला पर्दे को थोड़ा-सा हटाकर वहाँ किवाड़ से लगाकर खड़ी हो गयी।

“ओ — आप है ?” — Application लाये ? — दीजिये।

विनोद बात बना गया — “अरे ! भूल गया।”

“भूल गया” तो यहाँ क्यों आये ? जानते हैं, यह कालेज का टाइम है ! प्रोफेसर साहब क्लास में होंगे। वहाँ, क्यों नहीं मिल लेते, मैं फिजूल यहाँ आते हैं ?”

वह चली गयी और विनोद भी चला आया।

किन्तु उसे सन्तोष नहीं हुआ। बेकार ही सही; अपमान हो, बला से, उसके दर्शन तो हो जाते हैं, अघरों पर मुस्काम न सही, आँखों में क्रोध ही देखूँगा। हसानों का हर भदाएं अच्छा होता है। इन्द्रधनुष के सातों रङ्ग एक-से-एक अच्छे !

वह तासरे दिन भी गया। चौथा-पाँचवां, इस प्रकार दिन पर दिन बातते जाते और विनोद की प्यास अधिकाधिक बढ़ती जाती। रोज वह प्रोफेसर मजूमदार का दरवाजा खटखटाता, रोज चपला आती — “रोज उसका आँखें नाचती और रोज वह छमककर अन्दर चली जाती। वह तो उसको देखकर ही अपने जी का तपन शान्त कर लेता; लेकिन पता नहीं, चपला विनोद को देखकर क्या सोचती !

एक दिन की बात है प्रोफेसर मजूमदार मुस्कराते हुए विनोद के कमरे में आये और बोले—“विनोद !”

“सर !” उसने कहा ।

“तुम्हें चाय से शौक है या नहीं ?”

“जरूर, सर ! जरूर” विनोद बोला ।

“तो रहा निमन्त्रण । कल शामको मेरे यहाँ आना !”

“बात क्या है ?”

“मेरी बड़ी बड़की, चपला... तुम जानते हो उसे... हाँ, उसीका कल जन्मदिन है !

ओह, प्रोफेसर मजूमदार... तुम आदमी नहीं, देवता हो !... तुम्हारे ऐसा उदार व्यक्ति ससार में मिलना कठिन है !... कितने अच्छे !!

विनोद साँस रोक कर कलका इन्तजार करने लगा । ओह... कल कल आयगा ! आज जल्द आगता क्यों नहीं ?... लेकिन, ये कपड़े !... कितने गन्दे हैं... और, पुराने भी... आउट-आफ़ डेट । चपला का जन्मदिन है; बड़े-बड़े लोग निमन्त्रित होकर आयेंगे, जज एडवोकेट, प्रोफेसर-प्रिन्सिपल, क्लबकटर, मैजिस्ट्रेट, और मैं उर्जासर्वी सदा की पोशाक में जाऊँगा ! लोग हँसेंगे और चपला ! वह क्या क्या करेगा ! छि ! छि: !!

यह तो कहो कि मुझे निमन्त्रण मिला गया । भला प्रोफेसर और आभ्य-देवता अनुकूल...

विनोद ने पौरन एक बड़िया सूट का आर्डर दे दिया । रुपये पास में थे नहीं, नीरद से उधार मांगा । नीरद सब समझ गया । फिर भी, रुपये दे दिये ।

और तब जैसे एक युग के बाद कल आया ! उस रोज विनोद का सुत्ती का इन्तिहा नहीं !... चमकदार सूट, और उस पर Evening-in-Paris की सुगन्ध की जपटें ! आसपास का वायुमण्डल गमक रहा था ।

विनोद का मन मौजें खेल रहा था । घड़ी देखी, वक्त हो रहा है ।

चल पड़ा; प्रोफेसर साहब के बंगले पर आवा । देखा, स्वयं प्रोफेसर साहब उसके स्वागत के लिये खड़े हैं । परन्तु, यह क्या... मैं अकेला ? और लोग कहाँ हैं ?

विनोद ने घड़ी देखी, कहीं वह टाइम के पहले ही तां नहीं आ गया ? लेकिन, नहीं; समय तो बिल्कुल यही है । फिर अभ्य निमन्त्रित व्यक्ति क्यों नहीं आये ?

“आभा, विनोद !” प्रोफेसर मजूमदार ने आगे बढ़कर कहा—
“एकदम राइट टाइम पर आ गये ।” बहुत पंकुभ्रम हो ! वाह !”

“जी हाँ !” विनोद बोला—“और लोग अभी नहीं आये क्या ?”
“और लोग कौन ?”

“तो, क्या मैं अकेला ही निमन्त्रित हूँ ?”

“हाँ जी विनोद !” प्रोफेसर मजूमदार ने मुसकरा कर कहा—
“तुम आ गये । मुझे दूसरों से क्या जरूरत ? ... जिन्हें आना होगा, आ जायेंगे । आभा, चाय ठण्डी हो रही है ।”

प्रोफेसर मजूमदार विनोद का हाथ पकड़ कर ड्राइंग-रूम की तरफ ले चले । कमरे के बीचोबीच एक टी-टेबल रखी हुई थी और उसके अगल-बगल तीन कुर्सियाँ !

एक कुर्सी पर वह बैठा और दूसरी पर स्वयं मि० मजूमदार । तीसरी कुर्सी अभी खाली थी ।

मि० मजूमदार ने पुकारा—“चपला !” ओ बेटी, इधर तो आ ।”

“आया, पिताजी !” कहकर वह जो आया तो विनोद की इत्तम्नी के सारे तार अविकल रूप से झनझना उठे ।

वह कुर्सी पर संभल कर बैठ गया ।

उसने एक बार विनोद की तरफ देखा और फिर मि० मजूमदार से पूछा—“क्या, गिताजी ?”

“अरे तूने मेहमान को प्रणाम नहीं किया । पहचानती है न इन्हें, वे भाज हमारे अतिथि हैं ।”

चपला ने कहा—“हाँ विनोद बाबू। इन्हें क्यों नहीं जानूंगी ?
...वे भक्तसर हमारे घर में तशरीफ लाया करते हैं।”

विनोद को तो किसी ने सातवें आसमान पर चढ़ा दिया। ये दोनो ‘‘बाप-बेटी कितने अच्छे हैं...कितने अच्छे ...’’

‘‘अच्छा, चपला !’’ मि० मजूमदार ने कहा—‘‘जा, इनके लिये चाय के आ। आज तुम्हारे हाथों से यह चाय खायेंगे।’’

वह धन्य हो गया ...

चपला चाय ले आया—‘ट्रे’ में भरकर। मि० मजूमदार सो स्वर्य चाय बनाने लगे। विनोद से कहा—‘‘चाय बना तो लोगे ?’’

‘‘नहीं।’’ उसने कहा।

‘चपला ! इन्हें चाय बना दे...हाँ, अभी...’’

चपला विनोद की बगल में, जरा उससे सटकर खड़ी हो गयी। इसका सामीप्य...विनोद को रोमांच हो आया चपला के वस्त्र जो उड़-उड़कर विनोद के इस भङ्ग से उस भङ्ग में लगे जाते तो उसकी देह पोषक के पत्ते की तरह कांपने लगती।

‘‘परेशान मत हो !’’ मि० मजूमदार ने किंचित् हास्यपूर्वक कहा—‘‘विनोद, अभी तो चाय पीना बाकी है !’’

चाय प्याले में ढाल दी गयी, दूध और शक्कर भी। और, तब एक पतली-सी नाजुक आवाज हुई—‘‘लीजिये !’’ और उस कांच की चूड़ियोंवाले कमसिन हाथ से विनोद ने चाय का प्याला उठाकर होठों से लगा लिया ‘‘ओह, कितना स्वादिष्ट !’’ गर्मी में गरम चाय ठण्डक पहुँचाती है। ‘‘ठीक ! बहुत ठीक ! और, वह भी किसी युवती के हाथ से मानो, बर्फ ...!!! हृदय शीतल, मन तृप्त, ...आत्मा शान्त !’’

‘‘तू भी बैठ जा, बेटी !’’ आज अतिथि के साथ एक प्याला चाय तू भी पी !’’ मि० मजूमदार ने चपला से कहा।

अब विनोद समझा, यह तीसरी कुर्सी क्यों खाली थी। ‘‘और जब मिस्टर मजूमदार उसकी बगल में बैठ गयी, तो विनोद की देह के

पसीना छूटने लगा ।

“देखा चलवाऊँ ?” मि० मजूमदार ने कहा ।

विनोद ने चाय की अन्तिम बँद को शेष करते हुए कहा—
“नहीं, सर !”

और, उसका भचरज बढ़ता जा रहा था—“आज क्या है ?”

‘विनोद बाबू को रुमाल दे, बेटा !’ मि० मजूमदार ने कहा—
‘और, चाय नहीं लोगे क्या ?’

उसने कहा—‘नो सर ! धन्यवाद !’

और चपला ने अपना रुमाल हाथ-मुँह पोछने के लिये विनोद को दे दिया । चपला का रुमाल... मुलायम, रेशमी, सुगन्ध से तर, कोमल ! उसने अपने कपाल से लगाया... मल्ट्रम पड़ा, जैसे चपला का हाथ विनोद के गालों को छू रहा है ! वह पुञ्जित हो गया ।

और, मि० मजूमदार मुस्करा रहे थे ।

विनोद सोचने लगा—“आज क्या बात है ?”

इतने में बाहर कोलाहल हुआ और उसने घूमकर जो देखा, जो काफेज के २५-३० लड़के बाहर खड़े हैं ।

प्रोफेसर मजूमदार ने कहा—“हलो ! आ गये, मगर जरा देर से ! चाय खत्म हो चुकी । खैर; कोई हर्ज नहीं । आओ, बैठो । एक कहानी सुनो !”

और, सभी लड़के प्रोफेसर मजूमदार को घेर कर कमरे भर में बिखर गये ।

“यह मि० विनोद हैं ” विनोद की तरफ इशारा करके प्रोफेसर मजूमदार ने कहा—‘और, यह मेरी लड़की चपला है ! तुम कौन दोनों को जानते हो ?’

“एक दिन मेरी लड़की ने कहा— पिताजी, आपकी अनुपस्थिति में रोज एक विद्यार्थी आता है और आपकी बलाश करता है । वह अपना नाम विनोद कुमार बतलाता है और रोज का उसका एक ही काम

रहना है—घर जाने के लिये खुशी !”

विनोद को काटो, तो खून नहीं ! और, लड़के मुस्करा रहे थे ।

प्रोफेसर साहब ने कहना शुरू किया—“मैं समझ गया । ऐसे लड़कों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ । मैंने चपला से कहा—बेटी, वह तेरा आशिक है । समझी न ?”

चपला उठकर जाने लगी, लेकिन मि० मजूमदार ने कहा—“बरा और बैठ ! अपने मिहमान की खातिर दारा तो कर ले !”

विनोद का सर घूमने लगा । इतनी ही देर में ऐसा परिवर्तन ! वह जैसे आसमान से गिर पड़ा ! मानो, किसी ने उसे स्वर्ग पुरी से ढकेल दिया, और वह त्रिशंकु के समान अधर में हाँ जटक रहा है ! इसका जा हुआ, उठकर भाग जाय, परन्तु, पैर में किसी ने बेड़ी मर दी थी ।

“लड़को !” प्रोफेसर साहब कहने लगे—“इसके बाद मैंने सोचा, क्यों न दोनों की मुलाकात करा दी जाय ? यह मेरा लड़का और वह मेरा विद्यार्थी ! दोनों में अगर प्रेम है, तो फिर वे एक-दूसरे से अपरिचित क्यों रहें ? इसलिये मैंने विनोद को आज चाय का निमन्त्रण दिया और मौका दिया कि वह चपला के नजदीक आये !”

इसके बाद प्रोफेसर मजूमदार विनोद की तरफ मुखातिब हुए—“विनोद बाबू, आप खुश क्यों हैं ?” “शर्माते क्यों हैं ?” “जाते कीजिये” “चपला आपके सामने बैठा है । जिसकी एक नजर के लिये आप दिन-रात बेचैन रहते, मेरा अनुपस्थिति में मेरे घर पर धावा भोलने और मिश्रण के अनक बहाने ढूँढ़ते, वह आपकी बगल में बैठा है” और आप बोझते भी नहीं ! अफसोस !”

विनोद के सर पर मानो सैकड़ों टन पानी पड़ गया ! काठ के डल्लू की तरह वह हिला, न हुआ । चुपचाप बैठा, जमीन की तरफ एकटक देखता रहा ।

“जा, बेटी, अब जा !” प्रोफेसर मजूमदार ने चपला से कहा—

‘तुम्हारे मिहमान तुमसे रंज हो गये; न मालूम क्यों ! ...क्या चाय मैं चीनी के बड़के नमक तो नहीं दे दिया था ? ...और, अब मैं इन्हें मना लूँगा । तू अब जा !!’

विनाद ...‘हाय रे, विनोद ! ...वह बत्थर हो गया !

चपला के जाते ही प्रोफेसर मजूमदार की आवाज में रुखापन आ गया । वह गरजकर बोले—“विनोद, इधर तो देख ! तूने चपला को क्या समझा था ? बाजारू छोकड़ी ...? माना वह जबान है; माना, उसमें रूप है; और यह भा माना कि मुझे उसकी शादी करनी ही पड़ेगी । परन्तु, तू जो उसकी फिराक में था, सो क्या तू उससे शादी कर सकेगा ? पहले अपने को देख, फिर चपला को देख, और, उसपर भी यदि तू मेरी जड़की से शादी करने के लिये तैयार हो, तो मुझे बहुत खुशी होगी । परन्तु, मैं कहता हूँ, तू उसके खर्च का भार संभाल सकेगा ? अरे, तू बिक जायगा ! ...मैं जब अठारह सौ रुपये में भी उसका पूरा-पूरा खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकता, तब ...तू तो अभी छोकड़ा है ? तेरी उम्र ही क्या है ! इसका पालन नहीं कर सकता । ऐसा खयाल छोड़ और जी लगाकर पढ़ । इस बार मैंने तुझे माफ किया । अगर भविष्य में फिर कभी तू मेरे बँगले में या उसके आसपास देखा जायगा, तो नतीजा बड़ा बुरा होगा । खबरदार, जो फिर कभी इस रास्ते से तू आया-गया !”

विनोद को इतनी शर्म मालूम हुई कि अगर उस वक्त धरती फट जाता, तो वह उसमें समा जाता ।

वह उठा और उठकर जाने लगा ।

प्रोफेसर मजूमदार ने कहा—“विनोद ! एक प्याला चाय और पी लो ।”

“सर !” विनोद की आँखों में आँसू छलछला आये—“मुझे माफ काजिये, सर !”

प्रोफेसर मजूमदार ने विनोद की पीठपर हाथ रखकर कहा—

“घबराओ मत, बिनोद !”

और, पुकारा—“चपला ! ...एक प्याला चाय बिनोद बाबू के लिये और दे जा । उस प्याले में नमक था,—इसमें चीनी देना ।”

X X X X X

उस रोज ओ बिनोद कमरे में घुसा, तो तीन दिनों तक कोठरी बन्द किये, न मालूम, क्या करता रहा । न खाना खाया, न वजास गया—वहाँ तक कि पेशाब करने के लिये ओ एकबार बाहर न निकला !

और; लगभग दो महीने तक तमाम होस्टल में एक प्याला चाय की चर्चा गरम रही ।

इसके बाद चाय आप ही ठंडी हो गयी ।



रहस्यमयी

इसी जुलाई महाने की बात है ।

हम अपने एक दोस्त की बारात में शामिल होकर सोनपुर से लखनऊ जा रहे थे । इंटर क्लास का एक पूरा कम्पार्टमेंट हम लोगों ने रिजर्व कर रक्खा था । कॉन्ट्रैक्ट त्रिज चल रहा था और उसके बीच हमारा तुमुल हास्य, हँसी-मजाक, आमोद-प्रमोद ।

हम लोगों की दीवानों जवानों को देख कर किसी मनहूस ने हमारे दल का नाम 'जौली पार्टी' रख दिया । और हमलोगों ने अपने दल का नाम चरितार्थ करने में कोई कसर न रख छोड़ी ।

शार्दा किसी की हो, बीबी किसी को मिले; हमें मतलब था लखनऊ से । और कानपुर एक्सप्रेस हमें उसी तरफ वेग से उढ़ाये लिये जा रही थी, जिधर सुनता था, नवाबों का वह नाजुक और हसीन शहर है ।

ताश के पत्ते, बादशाह से लेकर इक्के तक, आपस में लड़ रहे थे और हमारी पार्टी का एक मनच्छा सदस्य झूम-झूम कर गा रहा था--
“लखनऊ हम पर फिदा है, हम फिदाये लखनऊ ।”

मुझे अच्छी तरह याद है वह ऊपरा स्टेशन था। हमारे दल के लोग बाहर घूमने-फिरने चले गये थे। कोई पानवाले से भगड़ रहा था; किसी को इधर उधर की गाड़ियों में ताक-झाँक कर आँखें सँकने की फिक्र थी और कोई बुक-स्टाल पर अखबार खरीद रहा था।

भकेला मैं अपने डिब्बे में बैठा ताश के पत्तों से उलझ-सा रहा था।

इतने में एक महाशय लड़खड़ा कर हमारे कम्पार्टमेंट में घुस आये। लाख मैंने रोका; मगर वह भी थे परले सिरे के काइया। भला मेरी घुड़कियों से कब मानने लगे? आकर मेरे सामने की खाली सीट पर बैठ ही ता गये।

मैंने कहा—दादा! यह डब्बा रिजर्व है। और, देखते नहीं, यह सीट भी दूसरे का है?

वह बोले—भाई, बैठने दो। माफ करो।

मैंने कहा—उठिये

वह गिड़गिड़ा कर बोले—सब्र कीजिए इस तरह खफा क्यों होते हैं?

मैंने कहा—यह भलमनसाहत के खिलाफ है। अगर, आप सीधे तरीके से नहीं उठते, तो मुझे किसी और चीज का सहारा लेना पड़ेगा।

लेकिन वह टस से मस नहीं हुए। बोले, आपकी सुश्री!..... हजरते दाग जहाँ बैठ गये, बैठ गये!

मैंने कहा—वाह रे!... और, ज्यों-ही उनका कुल सामान उठाकर खिड़की के रास्ते से बाहर प्लैटफार्म पर फेंकना चाहा, त्यों-ही हो-हल्ला मचाते हुए हमारे दल के सभी सदस्य डब्बे में पैठ गये—“क्या है?... क्या है?”

और तत्काल हमारा हाथ रुक गया।

मैंने कहा—इधर देखो... भले मानस...

आदमी, उब्र साठ के पार, चेहरे पर जुदापे की झुर्रियाँ और नाक

पर चढ़मा । आँखें ऐसी कि जिन्हे देखकर दया आ जाय !

गाड़ी खुलने लगी । मैं पुनः तत्पर हुआ । हमारी पार्टी का जीन्डर चन्द्रशेखर था । आगन्तुक को देख कर वह ओठों में मुस्कराया और आँखों से समझा दिया कि छोड़ दो; और नहीं कुछ तो, हँसने-हँसाने का काफी मसाला है ! सफर में यही सही ।

मैंने कहा—अच्छा ।

× × × × ×

इंजिन ने सीटी दी, पहियों के नीचे घड़घड़ाहट शुरू हुई और देखते-देखते गाड़ी हवा से बातें करने लगी ।

हरिमोहन ने ताश के गड्ढे को उठाकर कहा—जो, इसबार खेलो, तो मात्तूम हो जाय !

चन्द्रशेखर बोला—ठहरो ।

और बात की बात में सब ने इशारों से तय कर लिया कि इसबार बुद्धे को छोड़ा जाय ।

इतने में उस वृद्ध पुरुष ने स्वयं पूछा—आपबोग कहाँ जायेंगे ?

चन्द्रशेखर ने कहा—जखनऊ ।

“क्यों ? किस मतलब से ?”

“बारात जा रही है—शादी है !”

“जा, हाँ !” बुद्धे की चश्मे के भीतर से झँकती हुई दाँ रसहान आँखों ने देखा—“कालेज के विद्यार्थी हैं !”

“जा, हाँ !” उसी लहजे में लड़कों ने जवाब दिया—“आपका आशय !”

“आशय—वाशय कुछ नहीं !” वृद्ध के होठों पर मुसकान की एक फीका लहर दौड़ गई—“जखनऊ जा रहे हैं । अभी स्टूडेंट हैं । नयी लवानी है । ठमंगें नई हैं । जरा फूक-फूक कर कदम रखियेगा ।”

“सो क्या ?” सभी लड़के एक साथ चिल्ला उठे—“सो क्या ?”

“यही कि जखनऊ है !”

“हमें साफ-साफ कहिए” लड़कों ने हठपूर्वक कहा—“साफ-साफ कहिए हमें !”

“सुनोगे ?” वृद्ध की आँखें न मालूम किस ज्योति से चमक उठी—“सुनोगे ?”

“हाँ-हाँ !” सबका सम्मिलित उत्तर था—“हाँ !”

“तो सुनो !” वृद्ध व्यक्ति ने कहना शुरू किया—“सुनो !”

X X X X X

“तब हमारी जवानों के दिन थे । आज जो तुम देखते हो, यह शुष्क काष्ठ के तमाम जर्जर शरीर... तब यौवन के उत्ताप से कंचन की तरह चमकता था । पहलू में दिल था । दिल में दर्द और उस दर्द से जब मैं व्याकुल होता तब, कलेजा थाम कर कहता—या इजाही मिट न जाए दर्दें दिल !

और झोंटे से दिल के अन्दर अरमानों की पूरा दरिया मौजें मगर रही थी । वे हौसले थे ।

मैं बा० ए० क्लास का विद्यार्थी था ।

मेरी शादी हो चुकी थी । और वही लखनऊ मेरी ससुराल हुआ । मेरे ससुर वहाँ के चलते-पुर्जे षकीलों में थे । और मेरी बाबी अर्भा मधुर षोडश के इस पार ही था ।

होस्टल में मेरा निवास था । परीक्षा के दिन बिल्कुल करीब थे । मैं अपने एकान्त कमरे में बैठा शेक्सपियर का एक नाटक पढ़ रहा था । रात का वक्त था । मैं पढ़ रहा था प्रेम का एक कौतुकपूर्ण वर्णन—जहाँ यूरोप के उस महाकवि ने अपने शब्दों के द्वारा उत्कट भावावेश उत्पन्न कर दिया था । मैं नाटक की नायिका से अपनी प्रियतमा के मुखचन्द्र का मिलान कर रहा था और एक अभूतपूर्व आनन्द के उल्लास में मेरा सुखमण्डल दास था, कि द्वार पर देखा, मेरे ससुर साहब !

इस वक्त !... मेरी ध्यान-मुद्रा भग्न हो गई । मैं चकित होकर उनके मुँह की ओर देखने लगा । प्रणाम करना भी भूल गया ।

“बबराओ मत !” उन्होंने अन्दर भाकर स्वयं एक कुर्सी खींच ली—“मैं हूँ। पहचानते हो न ? हाँ, तो अभी तुम्हें मेरे साथ लखनऊ चलना होगा। अभी तुरन्त।”

तब, जैसे मुझे होश हुआ। मैंने तत्क्षण प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहा—“चलना ही है, तो चलींगा। इतनी जल्दी की क्या जरूरत है ?”

“नहीं, नही” वह बोले—“देर करना ठीक नहीं।”

“आखिर, ऐसा कौन सा काम है जो”

“फटपट खा जाओ !” बात काट कर उन्होंने कहा—“गास्ते में सारी बातें समझा दूंगा।”

“आप नहीं खायेगें क्या ?”

“नहीं।”

मैं खा-पा कर तैयार हो गया। स्टेशन आया, तो गाड़ी खुलने-खुलने को थी !

झैर, किसी तरह टिकट लेकर हमलोग एक डब्बे में घुस जाँ गये। जगह तो आप ही बन जाती है।

रास्ते-भर कोई बातचीत नहीं हुई। मैं टांग फैलाकर बर्थ पर सो गया और मेरे ससुर साहब बैठे-बैठे ऊँघने लगे।

वर पर पहुँच कर उन्होंने बतलाया कि मेरी जो छोटी साली है, उसी का शादा करना है, वह एक वर का तलाश कर चुकी है—लखनऊ में हा, पढ़ा लिखा, सुन्दर और सुशील। और मुझे उसी को देखना है कि वह मेरी साली के उपयुक्त है या नहीं।

मैंने मन ही मन कहा—क्या इसी काम के लिए इतना शोर मचाया गया ? कहाँ पटना और कहाँ लखनऊ। और काम देखो, तो कुछ नहीं। ... हिश !

प्रकट में बाँझा—बहुत अच्छा।

×

×

×

×

×

ससुरास के स्वादिष्ट भोजन का सम्पूर्ण आनन्द लेकर मैं बाहर, बरामदे में कुर्सी पर बैठा सिगरेट का मीठा-मीठा धुआँ खींच रहा था।

मेरी साली कहती थी कि सिगरेट का धुआँ उसे बहुत पसन्द है। पीना नहीं, देखना। जब कोई सिगरेट पीता है, तो उसके मुँह से धुएँ के जहरदार गुच्छे निकलते देखकर उसे बड़ी खुर्रा मालूम पड़ती थी। और अक्सर जब मैं सिगरेट पीने लगता, उसकी सौंधी-सौंधी गन्ध से खिंच कर वह अवश्य ही मेरे पास पहुँच जाती।

तो, मैं सिगरेट पी रहा था और वह पर्दे के अन्दर से झाँक रहा था।

—“कहिये, हजरत ! कैसे पहुँचे ?”

मैंने कहा—“गाड़ी से,।”

“बात मत बनाइए। ... कहिये, कहाँ से आये ?”

“अरे ! ...” मैंने कहा—“तुम्हारा शादी हो रही है ... और तुम्हें खबर तक नहीं ! मैं तुम्हारे लिये एक बड़िया सा-वर ढँढ़ने के लिये आया हूँ। मुझे कहो कैसा दुलहा चाहिए तुम्हें ?”

“तुम्हारा बुरा हो ...” वह अन्दर भाग गई—“छिः ! छिः !”

और, तब मुझे अपनी भूल मालूम हो गई। मैंने उसे भगाकर दरवाजे की तरफ देखा। एक आदमी झुक कर मुझे सलाम कर रहा है।

वह आदमी, मैंने देखा, आदमी ही है या और कुछ ? बेत की तरह लचीला जहाँ से चाहे अपने बदन को मोड़ दे; तब तक ऐसा कि काँच का गिलास; नजाकत ऐसी कि मिनट में सौ बार कमर बल खा जाय; चूड़ीदार पायजामा; सलेमशाही जूते; लम्बी शेरवानी; शाही जमाने की पल्ले की टोपी और नख से शिख तक नाज, अन्दाज और नाजुकपन !

मैंने गौर से उस व्यक्ति के चेहरे की तरफ देखा ... नए फैशन के लम्बे-लम्बे बाज, भौंहें बनाई हुई और दाढ़ी-मँछ सफाकट !

मेरी ओर देखकर वह मुस्कराया, मानों मुझसे पूछ रहा हो—

आऊँ कि नहीं ?

मैं क्यों रोकता उसे ? कहा—चले आओ ।

वह मेरे नजदीक आकर खड़ा हो गया ।

मैंने कहा—क्या काम है ?

“हुजूर की मेहरबानी चाहिए !” वह बोला—“युलाम को किसी चीज की जरूरत नहीं । मेरा काम है गाना-बजाना । मैं गा-बजाकर वहाँ से रईसों और बाबुओं को खुश किया करता हूँ । मैं क्या गाऊँगा, सरकार ? ” अब तो इस विद्या का पृथिवी से लोप हो जाता जा रहा है ? मेरे दादे के दादे बादशाह शाहजहाँ के दरबार में थे । मैं तो किसी तरह सुर-तान मिला लेता हूँ । बस ।”

“तो, क्या अभी गाओगे ?”

“अभी तो नहीं हुजूर ! ” गाने का यह वक्त भी नहीं । मैं इस दरबार में अक्सर आता हूँ । बड़े मासिक मुझे बहुत चाहते हैं । उन्हें मेरा गाना इतना पसन्द है कि उसके सामने किसी गैर को दाद ही नहीं देते । आपका नाम सुनकर दौड़ा हुआ आया हूँ । इस वक्त दर्शन हो गए, मेरा अहो भाग्य ! हुकम होगा, तो कल गाना भी सुनाऊँगा ।”

इतना कह कर उसने कपड़े की तह से एक चीज निकाली, बड़ी नजाकत से और उसी अदा से मेरी तरफ बढ़ा दी—“सरकार, यह भेट !”

मैंने देखा—एक टोपी । टोपी घोपा ताँ मैं नहीं पहनता । फिर भी वह इतनी खूबसूरत थी और टोपी वाले ने उसे इतने प्रेम से दिया था कि मैं इनकार नहीं कर सका ।

“इसका कीमत ?” मैंने पूछा । कीमत ? वह हँसा—“कीमत क्या पूछते हैं, सरकार ? मैंने इसे आपके हाथों बेचा नहीं है । यह तो एक गरीब आदमी का तोहफा है । आप इसे मंजूर करें ।”

लेकिन तुम कहते हो कि मैं गरीब आदमी हूँ । फिर एक गरीब आदमी की चीज मैं मुफ्त में कैसे लूँ ?”

वह उदास हो गया ।

“इसकी कीमत कहो ... कीमत !” मैंने जोर देकर कहा ।

“अगर मैं इसकी कीमत न बूँ !”

“तो, मैं भी तुम्हारी टोपी नहीं बूँगा !”

“अच्छा, तो ... जो आपकी खुशी हो, दे दें !”

“भले आदमी !” मैंने कहा, “तुम्हें इसका दाम बताते नुकसान क्या होता है ?”

“हुजूर !” वह बोला—“मुझे शर्म मालूम होती है । सच कहता हूँ, ऐसी कितनी ही टोपियाँ मैंने बड़े मालिक को दीं लेकिन उन्होंने कभी दाम नहीं पूछा । लेकिन आज आप ... हुजूर ! मैं गरीब हूँ, तो क्या ? ... मेरे दादा के वालिद बहादुरशाह ‘जफर’ के खास मुसाहिबों में थे । आप यक़ीन न करेंगे, मगर क्या से मेरा सर झुक रहा है !”

“लेकिन,” मैंने कहा—“यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी टोपी रख बूँ, तो तुम्हें इसकी कीमत बताना ही पड़ेगा ।”

“आप अपना हठ न छोड़ेंगे क्या ?”

“इगिज नहीं ।”

“ता, काहए ... छः आने पैसे दे दीजिए । यही इसकी कीमत है ।”

“तुम मजाक तो नहीं करते हो ?”

“मजाक ?” वह कॉप कर बोला—“नहीं, ता हुजूर !”

“टोपी का क्या ठाक-ठाक दाम बतलाते हो ?”

“तो, क्या मैं आपको ठग सकता हूँ ? ... छः आने से कम में अगर कहों ऐसी टोपी मिल जाय, ता मुझे एक पैसा भी मत दीजिएगा ।”

“आ-ह-हो !” मैंने कहा, “तुम मेरा मतलब नहीं समझे ! मेरा ख्याल है कि टोपी का दाम बहुत कम है । तुम इतना कम क्यों बतला रहे हो ?”

“यही तो दाम है । मैं कम कहाँ बतला रहा है ?” वह बोला ।

“सैर, जो हो !” मैंने कहा, “मैं तुम्हारी टोपी के केता हूँ । यह

जो, अपने पैसे !... मगर, वाकई टोपी बड़ी खूबसूरत है !”

“मैं आपका शुक्रिया अदा करता हूँ ।” वह सजाम कर बोला -
“अब हजाजत हो । कल फिर आऊँगा ।”

मैंने कहा—“बहुत अच्छा ।”

और वह झमत्ता हुआ सीढ़ियों से उतर गया ।

× × × × ×

मैं सोच रहा था, कितनी खूबसूरत टोपी और कितना कम दाम
सिर्फ छः आने पैसे, बिल्कुल नहीं के बराबर ! बाजार में ऐसी टोपी
का दाम कम से कम दस रुपये होगा । और इसने दिया, सिर्फ छः
आने पैसे में ! यह भी गजब का आदमी निकला ।

उधर से मेरी साली आई —“क्या सोच रहे हो भाइय ?”

मैंने कहा,—“यहो कि तुम्हारी गादी किससे हो ? दुनिया में
ऐसा कौन खुशनासीब है ? ”

मैंने तरकश से फिर वही पुराना तार निकाला और वह तिलामिला
कर भाग खड़ा हुई ।

आज दूसरा दिन था । उसने वादा किया था कि वह आबगा ।
आज गाना सुनायगा । मुझे उसका गाना सुनने की उतनी उत्कण्ठा
नहीं थी, जितनी उत्सुकता थी उसके व्यक्तित्व को जानने-समझने की ।
वह मुझे कुछ विचित्र-सा लगा । और इसलिए मैं अधोस्ता से उसके
आने का इन्तज़ार कर रहा था ।

लेकिन साग दिन बीत गया और वह नहीं आया । मेरा धारणा
बदल गई : मैंने सोचा, शहर में ऐसे ही उचक्के दुआ करते हैं, जिनका
पेशा ही यही रहता है । वे कहते हैं कुछ और करते हैं कुछ ।

आखिर, उसका इरादा क्या था ?...लेकिन, दस रुपये की
टोपी छः आने में दे डालना...जान न पहचान...मैं इस शहर का रहने-
वाला भी नहीं !...आज हूँ कल चला जाऊँगा । “आखिर, उसका
मतलब क्या था ?

वह लगा, जैसे एक पहेली हो !

मेरा काम खत्म हो चुका था । ससुर साहब के हुबम से मैंने वर-महोदय को देख लिया । योग्यता की भी जांच कर ली । वह मुझे बेहद पसन्द आये । और अपनी पसन्दगी की सूचना भी मैंने यथासमय संयोग पाकर उन्हें दे दी ।

मैं कल लखनऊ से चला जाने वाला था । सोचा, आज जरा शहर की सैर कर लूँ !

मैं अकेला घूमना पसन्द करता हूँ । साथ में किसी के रहने से घूमने-फिरने में आजादी नहीं रहती । यों, जिधर पैर बढ़ाये, दो चार चक्कर लगा कर लौट आया । न कोई बन्धन न किसी का भय ।

शाम होने में कुछ देर थी ।

मैं अमीनाबाद पार्क से निकल कर हजरतगंज चौराहे पर आया । मैं शाम की पोशाक में था । एक अच्छी का कुरता, रेशमी चादर, दुपली टोपी, छड़ी और बस । छड़ी घुमाता हुआ मैं दाहिने फुट-पाथ में चला जा रहा था ।

सहसा 'हुजूर !' की आवाज से मैं चौंक पड़ा । आवाज जरा-जरा सी पहचानी हुई मालूम पड़ी । और जब वह नजदीक आया, तो मैंने बेधड़क पहचान लिया—वह तो वही था ।

"तुम तो एक नम्बर के झूठे निकले, जी !" मैंने कहा ।

"बाबूजी !" उसने जवाब दिया—"सख्त अफसोस की बात है कि मैं कल आपकी खिदमत में हाजिर नहीं हो सका । क्या करूँ, ग़राब आदमी हूँ । खर्च-वर्च का भी इन्तजाम करना पड़ता है । आपकी ऐसी जमींदारों नहीं, जो बैठे सैकड़ों रुपये महीने मिल जाया करे । हाँ, एक जमाना था, जब मेरे घर में बिलियॉ मक्खन में नहलाई जाती थीं । तब मेरे वाजिद नवाब वाजिदअलीशाह के अन्तरंग मित्रों में से थे । नवाब साहब उनकी इतनी कद्र करते थे कि अपने साथ एक आसन पर बिठलाते थे । तब मैं बहुत बच्चा था और जब मचलता, तो नवाब

साईब की दाढ़ी के बाल पकड़ कर नोच लेता !.....मगर, वाह रे नवाब ! उफ-उफ करते हुये मुझे अपनी गोद में बिठा लेते और मैं हर्ष से खिलखिला पड़ता !”

इतना कह कर उसने एक लम्बी साँस ली—“मगर, अब तो बाबूजी, लखनऊ का पासा ही पलट गया है । यह जो शहर देख रहे हैं पुराने शहर का कंकाज मात्र है !... मुर्दा, निर्जीव, शव !!”

“खैर । अब कब गाना सुनाते हो ?”

“जब कहें, सरकार !... कल ही सही ।”

“कल तो मैं चला जाऊँगा ।”

“नहीं, हुआ !” वह चमक कर बोला—“कल कैसे जायँगे ?... भभा आप ठहरेंगे !... ठहरेंगे न ?”

मैं कुछ सोच में पड़ गया । क्या उत्तर दूँ ? इतना भला आदमी और उसका यह अनुरोध । बोला—“इच्छा तो नहीं है; लेकिन, देखो, शायद ठहर जाऊँ !”

“अच्छा, इधर आइये । पान तो खा लीजिये !” उसने कहा ।

“पान ?” मैं बोला—“अभी छोड़ दो । क्यों तकलीफ करते हो ?”

“बाबूजी !” वह अधीर होकर बोला—“यह आब क्या कहते हैं ? ... तकलीफ ?... अरे, इसमें तकल्लुफ की कौन सी बात है ? जरा सा पान, आइये... खाइये भी तो !”

उसने बढ़कर मेरा हाथ पकड़ लिया । मैं विवश हो गया । कहा— “अच्छा, चलो !”

हजरतगंज की मोड़ पर वह मुझे एक पान वाले की दुकान पर ले गया और मुझे खड़ा कर पान वाले को आर्द्र दिया—“चार बीड़े बढ़िया पान तो जगाना जो, सोने की तबक खड़ाकर !”

पानवाले ने एक बार भेद-भरी दृष्टि से मुझे सर से पैर तक देखा, मुस्कराया और फिर पान जगाने में मशगूल हो गया । और मैं वहीं खड़ा-खड़ा सोचने लगा, यह आदमी है या... भागत !

पानवाला रह-रह कर मुझे घूर लेता । मुझे ऐसा जान पड़ता, जैसे मैं पकड़ा गया हूँ !

इतने में पान तैयार हो गया । मेरे साथी ने पानवाले से पान के चारों बीड़े लेकर मुझे कुछ इस ढंग से पेरो नजर किया कि मैं खिन्न-खिन्ना पड़ा ।

और जब से एक चवर्त्ता निकाल जब तक पान वाले को दूँ, तब तक उसने पर्स से एक-ब-एक दो रुपये निकाल कर दूकान में फेंक दिये । कत्थे के पीतल के चमचमाते बर्तन से टकरा कर दोनों रुपये चींकार कर उठे । शर्म के मारे मेरे मुँह का पान जहर हो गया । मेरी चवर्त्ता बन्द हो रह गयी—मुट्ठी खुला ही नहीं । और उस व्यक्ति ने भयानक रोब से पानवाले को कहा—“बाबू जब आवें, इन्हें पान जगा कर देना । और देख—पैसे माँगेगा, तो सर तोड़ दूँगा । समझे ?”

पान वाले ने कहा—“हाँ, सरकार ।”

मुझे मालूम पड़ा, जैसे मेरा भीषण अपमान किया जा रहा हो । मैं अपने को छोटा महसूस करने लगा—“इतना छोटा, ... इतना छोटा ! ... दो-दो रुपये के पान—और उस पर इतना रोब !—मैंने कहा—“अब मुझे जाने दो !”

‘अभी कैसे सरकार ? शहर तो आप ने देखा नहीं !—मेरे साथ तो घूमे-टहले नहीं !’

मैंने कहा—“फिर किसा दिन !” और चाहा कि किसी तरह बला टल जाय । लेकिन, आई बला कब सहज ही जाती है ?

उसने कहा—“ठहरिये तो !” और वहीं से पुकारा—“ओ, तांगा ! ... तांगा ओ !”

एक तांगावाला तुरन्त आया ।

मैं नहीं-नहीं करता रह गया ! और उसने खींच कर मुझे तांगे पर जाद दिया । और, खुद भी मेरी बगल में बैठ गया ।

तांगा चल पड़ा ।

× × × × ×

मैंने कुछ कहने के मवसल से कहा—“पान तो बहुत ही बढ़िया बने थे ।”

“हाँ ।” वह सुनते ही सँभल कर बैठ गया—“अब क्या पान खाते हैं, हुजूर ! वाजिदअलीशाह के जमाने में ऐसे पान तो बकसियाँ खाती थीं !... आप पान खाँय और उसकी तरावट से मेरा कछेला टंढा न हुआ— तो फिर पान की तारीफ़ ही क्या ?”

तांगावाला बोला—“कहाँ के चूँ सरकार ?”

सरकार ने कहा—“जिधर तुम्हारी सुघी हो !”

मैं उस अजनबी आदमी की हरकतों पर हैरत में था । चुप था । देख रहा था कि भागे क्या होता है ?... एक उत्सुकता थी, जो प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही थी ।

कुछ देर की निस्तब्धता के बाद उसने कहा—“बाबू जी, एक बात पूछूँ ?... बुरा तो नहीं मान जायेंगे !”

“पूछो- अगर अच्छी बात होगी, तो बुरा क्यों मानने लगा ?”

“नहीं, वादा कीजिये ।”

“अच्छा, वादा करता हूँ ।” मेरा कौतूहल बढ़ता ही जा रहा था ।

“आपकी बीबी कैसा है ?” उसने बड़े-ही मीठे शब्दों में पूछा ।

मैंने कहा, “तुम्हारा मतलब ?”

“कोई खास मतलब नहीं” उसने मुस्करा कर कहा—“यों-ही पूछा !”

“अगर, मैं न बतलाऊँ, तो ?”

“तो मेरा बस ही क्या ?” वह बोला । और थोड़ी देर बाद आप ही रुक-रुक कर कहने लगा—“हाँ ... जिसने पूछा था ... उसको कह दूँगा कि बाबू ने ... नहीं बतलाया !”

मैं चौंक कर बोला—“क्या कहा ? ... किसने पूछा था ?”

“जब आप बतलाते ही नहीं, तो फिर मैं क्या कहूँ ?”

“अच्छा, मैं बतलाता हूँ” मैंने कहा—“पहले तुम यह कहो कि पूछनेवाला कौन है ?”

“पूछनेवाला नहीं” उसने कहा—“पूछनेवाली !”

“पूछने वाली !!!” मेरे विस्मय का सामा न रही और मैंने अपने साथी का कंधा पकड़ कर जोर-से हिला दिया ।—“पूछनेवाली ??”

“हाँ” वह वैसा हाँ गम्भीर था । “क्या आप इस शहर में और कभी आए थे ?”

“जब मेरी ससुराज है, तब आने-जाने का कौन ठिकाना ?”

“नहीं, मैं पूछता हूँ, शादी होने के पहले ?”

‘नहीं, शादी होने के पहले मैं इस शहर में कभी नहीं आया ।’

“आप भूलते हैं ।”

“तुम मुझे धोखा तो नहीं देते हो ?”

“या खुदा !” वह बोला—“अब मैं आपको कैसे यकीन दिलाऊँ ? आप शादी के पहले भी कम से कम एक बार तो जरूर यहाँ आये थे । नहीं तो .. वह कैसे आपको देखती ?”

“कौन ?” मैंने कहा—“वह कौन ?”

“वह...वहाँ, जिसने आपकी बीबी के बारे में पूछा था ।”

“पहेली मत बुझाओ !” मैंने व्याकुल होकर कहा—“सुनासा हाल कहो कि क्या है ?”

“वह आपकी प्रेमिका है, समझे ?” छट्टता से वह होठों और आँखों में मुस्करावा और बोला—“समझे जनाब, वह आपकी प्रेमिका है !”

प्रेमिका ?...और लखनऊ में ?...मुझे महान आश्चर्य हुआ और साथ ही बर्गी एक मीठी गुदगुदी भी—“प्रेमिका ?”

“हाँ, हुजूर !” उसने तपाक से कहा—“और वह मुद्दत से आप पर जान देती है ?”

“सुरू पर जान देती है !!” मैंने चिल्लाकर कहा—“तुम मजाक

तो नहीं करते हो ?”

“मजाक करे आपका दुबमन !” उसने कहा—“मैं सच कहता हूँ, जिस दिन से उसने आपका सूरत देखी है, उसी दिन से वह बेचैन रहता है। न खाती है, न पीती है। न दिन को आराम और न रात को नींद। सारे दिन बेकली में तड़पती रहती है और जब-जब होश में आती है, तब-तब आपका नाम लेकर पुकारती है।”

“लेकिन, मुझे तो नहीं मालूम !”

“आपको क्या मालूम ! भला चाँद को क्या मालूम कि उसके वियोग में चकोर चिनगारियाँ निगल लेता है ? आपने उसे नहीं देखा; मगर उसने आपको देखा प्यार किया और अपना सवस्व न्यौछावर कर दिया।”

“तुम कैसे उसे जानते हो ?”

“मैं क्यों नहीं उसे जानूँगा, बाबूजी !” वह मुँह मटका कर बोला—“वह मेरे पड़ोस ही में रहता है ! बिल्कुल जवान लड़की। खूबसूरत कि चाँद का टुकड़ा हो ! दिल की नेक हुजूर, ऐसी इसीन और परी-सी लड़की दुनिया में शायद ही कोई हो !” ह, शायद ही कोई हो !”

‘सच ?’

“हाँ, सरकार !” उसको बड़ी उम्मीद थी कि आप उसके प्रेम का यथोचित उत्तर देंगे। लेकिन आप उसकी खोज-खबर कहाँ लेते कि उल्टे शादी ही कर ली और सो भी इसी शहर में। उसके सारे हौसले पस्त हो गये। उमंगों पर पानी फिर गया। आपके विवाह का समाचार भी उसे मालूम हुआ। वह इतना दुःखी हुई कि उसने मुझसे कहा, मुझे थोड़ा-सा विष ला दो, मैं मर जाऊँगा। अब जी कर ही क्या करूँगी ? मैंने समझाया, बुझाया और रोका, तब कहीं शान्त हुई। लेकिन अब भी दर्द मिटा नहीं। और जब कभी सीवन खुल जाती है, तो घण्टों बेजार रोया करती है।”

मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा। इतनी मुश्किल में शायद ही कभी

जिन्दगी में पड़ा होऊँ। इस शहर में एक ही स्त्री को मैं जानता हूँ और वह है मेरी अपनी ही बीबी। दूसरी का मैंने देखा और न जानता ही हूँ। फिर यह मेरी प्रेमिका कहाँ से निकल आई ?

मैं सोचने लगा, “प्रेमिका ...

कोई भी हो, अपनी प्रेमिका की तरफ जरूर आकर्षित होता है। विवाहित हो या अविवाहित; युवा हो या वृद्ध ... कोई बात नहीं। प्रेमिका के नाम में है ही एक ऐसा अद्भुत रस, जो बलात् हृदय को अपनी ओर खींच लेता है।

और, फिर “मेरी प्रेमिका” तो, स्वप्न-लोक की परी, मेरा याद में आँसू, तड़पन, पीड़ा, अकुलाहट, विष...ओह, कहीं सचमुच विष न खा ले !!

और, कहता है, सुन्दर भी है; सुन्दर और नेक-दिल ... तभी तो इतना प्रेम ! ... किन्तु मैं विवाहित ... छिः प्रेम में कोई दोष नहीं !!

“तो, क्या उससे मुलाकात न कीजियेगा ?” मुझे गहरी चिन्ता में देखकर उसने टोका—“उसे किसी तरह मालूम हो गया है कि आप इस शहर में आये हैं। तबसे उसकी बेचैनी और बढ़ गई है। दिन-रात रोती रहती है। कहती है, एकबार मुझे दर्शन करा दो—सिर्फ, एक-बार ! मैं और कुछ नहीं चाहता। मैं सिर्फ एकबार उनका कमल-मुख देखना चाहती हूँ। इसीसे मेरी प्यास मिट जायगी। मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगी। मुझे उनके दर्शन करा दो।”

“लेकिन मेरी तो उससे कभी की मलाकात ही नहीं है !” मैंने अपनी झेंप मिटाने के लिये कहा।

“इससे क्या ?” जरा उस अबोध बालिका पर तरस कीजिये, सरकार ! अगर आप उससे मुलाकात न करेंगे, तो वह तड़प-तड़प कर मर जायगी ! आपके वियोग की पीड़ा वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकती। सिर्फ आपही के दर्शन के भरोसे वह अभी तक जी रही है, नहीं तो कब के उसके प्राण-पखेरू उड़ गये होते ! अपने दर्शन से

उमे जीवन-दान दीजिये । उसके पास धन की कमी नहीं; रूप की कमी नहीं, यौवन की कमी नहीं, कमी है तो केवल आपकी । वह आपसे भी कुछ नहीं चाहती । सिर्फ आपको अपने पास बिठा कर, भर नजर देखकर अपने जीवन को धन्य करना चाहती है । आप जानते हैं, युवती और रूप-लावण्य युवता होने पर भी उसने अपनी शादी नहीं की । क्यों ? उसके कारण आपही हैं । वह मन-ही-मन पति के रूप में आपको वरण कर चुकी थी । लेकिन आप ऐसे निष्ठुर निकले कि उसकी जरा भी परवाह न कर अपना विवाह कर लिया । वह सूखी हुई गुलाब की कली की तरह पैरों के तले रौंद दी गई । 'हाय रे !'

"तो, तुम क्या चाहते हो ?"

"मैं चाहता हूँ, ... मैं कहूँ मैं चाहता हूँ कि" उसका आँखें चमक उठीं— "आप एकबार उसके घर पर तशरीफ ले चले ! वह बहुत खुश होगी बहुत खुश होगी । उसके प्राण बच जायँगे । आपको कोई हानि नहीं होगी । समय भी अधिक नहीं लगेगा । जितनी ही देर आपकी तबियत चाहेगा, आप वहाँ ठहरेंगे । कोई रोक नहीं, कोई बंधन नहीं । वह आप पर मुग्ध है । वह व्याकुल है । उस पर दया कीजिये । एक अबला के नाम पर, प्रेम के नाम पर, मनुष्यता के नाम पर एकबार उसके घर पर चलिये । मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आप किसी प्रकार के संकट में नहीं पड़ेंगे ।"

"लेकिन, अभी तो मैं नहीं जा सकता !"

"वह बेचारी मर जायगी, ऐसा मत कीजिये, दुजूर !"

"मैं मानता हूँ, लेकिन अभी मैं जाने से मजबूर हूँ । कल चलूँगा ।

जरूर ।"

"लेकिन कल तो आप घर जाने का विचार कर रहे हैं !"

"अब कैसे जा सकता हूँ ?"

"छल तो नहीं करेंगे ?"

"हर्गिज नहीं ।"

“तो कल मैं आपके बँगले पर आऊँ ?”

“आने की जरूरत नहीं। मैं स्वयं शाम को घूमते-टहलते इधर ही आ जाऊँगा।”

“फिर भेंट कहाँ होगी ?”

“अमीनाबाद पार्क में !”

“जरूर ?”

“हाँ, जरूर।”

मैंने ताँगेवाले को रुकने के लिए कहा।

“क्या आप उतर जायेंगे ?” वह बोला।

“हाँ। न जाने, मेरा जी कैसा कर रहा है !”

“मुमकिन नहीं कि भाग इधर हो, उधर न हो !” उसने मुस्करा कर कहा “अच्छा, जाइए। मगर, कल जरूर आइएगा। मैं इन्तजार करूँगा ! बहाना कीजिएगा, तो समझ लीजिए—एक निर्दोष आत्मा की हत्या का अपराध लगेगा।”

मैं ताँगेवाले को रुपया देने लगा। वह बोला—“यह कैसा ? ... आप जाइए। किराया मैं दे दूँगा।”

मैं चलते-चलते बोला—“अच्छा, भाई ! तुम्हारा नाम क्या है ? ... वह तो तुमने बतलाया ही नहीं !”

उसने हँस कर कहा—“जरूरत पड़ने पर मुझे गुल के नाम से याद कीजिएगा।”

× × × × ×

रात-भर गुल और उसकी हसीन परी मुझे चिकोटियाँ काटते रहे और रात भर मैं उनका याद में तड़पता रहा। ज्यों-त्यों कर सुबह हुई कि मेरे ससुर साहब आ धमके।

“भाज तो जाओगे ?”

“नहीं।” मैंने कहा—“रात-भर नींद नहीं आई। सिर में दर्द है। कल जाऊँगा !”

“बहुत अच्छा” कह कर वह चले गये। और मैं फिर सोने का उपक्रम करने लगा। मगर पलकें झँपती ही नहीं थीं!... यहाँ तो “नैनन में नैन” थे। ऐसा मालूम पड़ता था, जैसे सीने में बैठ कोई दिल को मला करे है!”

शाम होते ही मैं पार्क में पहुँच गया।

गुल सचमुच मेरा इन्तजार कर रहा था। मेरे पहुँचते ही उठ कर खड़ा हो गया—“अहा! आप आ गए। मैं तो समझा, अब आप आने के नहीं!”

“जब वादा कर चुका, तब मुकर कैसे जाता?”

“तो क्या सचमुच चलिङ्गा?” गुल का आँखें खुशा से नाच उठी—“चलिङ्ग।”

शहर की चक्रदार गलियों के रास्ते से वह मुझे गन्तव्य स्थान की ओर ले चला। आगे-आगे गुल जा रहा था और पीछे-पीछे बुत की तरह मैं। मैं जानता था, यह रास्ता खतरनाक है; फिर भी, हृदय में जो एक उत्सुकता थी, वह मुझे परीशान कर रहा था। मैं चाहता था, गुल से जान छुड़ा कर भाग निकलूँ मगर यह काम मुश्किल था। मैं जानता था और जान-बूझ कर गुल का पल्ला पकड़ा था।

मोड़ पर फिर उसी पानवाले की दूकान मिली। गुल ने कहा—“जरा पान तो खाते जाइये।” और पानवाला हमें देखकर फिर मुस्कराया, फिर उसने सोने की तबक चढ़ा कर चार बीड़े पान दिये और फिर गुल ने दो रुपये उसके आगे फेंक दिये।

मैं चकित-सा देखता रहा। यह गुल “क्या है जो इस तरह मेरे वास्ते रुपये फेंक रहा है! यह गुल”

इतने में गुल एक छोटे से मकान के पास आ कर रुक गया—बाबूजी, आप आ गये!”

“कहाँ?” मेरा जी धड़कने लगा।

“इसीना का घर यही है!” उसने कहा।

“कौन हसना ?” मैं घबरा कर बोला ।

“अरे, सरकार !” वह बोला—“इतनी दूर से जिसके लिये आये
“ यहाँ आकर अब भूल गये !”

“तो जो-कुछ करना है, जल्दी करो ।”

“ठहरिये “तब तक मैं खबर करता हूँ ।” वह मकान के अन्दर
चला गया ।

मैंने देखा, छोटा-सा दुमंजिला मकान है और बाहर से देखने पर
ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि किसी शराफ का घर हो ! “गन्दा मुहल्ला,
चारों ओर बदबू, इधर-उधर लम्पट आदमियों का चुहल-पुहल” मैं
सोचने लगा कि किस बजा में फँस गया ।

फिर भी हसना की याद कर दिल में एक गुदगुदी-सा लग रही
थी । कब उसने देखा, कब मुहब्बत की और कब से तड़प रही है । “
“क्या सचमुच मुझे कोई प्यार करती है ? “मैं इस योग्य हूँ
क्या ?

गुल ने धीरे-से पुकारा—“आइए, बाबूजी ! “सीधे चले आइए ।”

मैंने धड़कते हुए कलेजे से मकान के अन्दर पहला कदम रखता
“ जाने, क्या हो !

मैं बेकार आया “शहर की बात है “कहीं गुल ने धोखा दिया,
तो ? “अकेला आदमी कोई संगी-साथी भी नहीं ! “किसी को
खबर तक नहीं “इस घर में, जो पराए का है “मैं क्यों यहाँ आया ?

मैंने जब मैं हाथ दिया “चार रुपये से ज्यादा न था । ढाढस
हुई । फिर भी, जो सहम रहा था ।

गुल मेरे मन के भाव को ताड़ गया । बोला—“इजूर, डर की
कोई बात नहीं ! “इसे आप अपना ही घर समझिये !”

मैंने साहस किया । और गुल मुझे लेकर एक सजे-सजाए
कमरे में पहुँचा । वहाँ जो दृश्य मैंने देखा, उसे देख कर मेरे आश्चर्य
का ठिकाना न रहा !

कमरा बिल्कुल आधुनिक ढंग पर सजाया हुआ था। दरवाजे पर फैशनेबुल पर्दा, दीवार पर मनोहर स्त्री पुरुषों की तस्वीरें, कुर्सी, मेज, गद्दी-कालीन, इन्ड्र-सेट, तमाम चीजें एक सुरुचि-पूर्ण ढंग से यथा-योग्य स्थान पर रखी हुई थीं। और कमरे के बीचो-बीच एक मखमली गद्दीदार सोफे पर एक युवती बैठी हुई थी।

मुझे देखते ही वह बदहवास-सी उठी और दौड़ कर मेरे गले से लिपट गई—“प्यारे, प्यारे !” जैसे, अनादि काल से हमारा परिचय हो और एक युग हो गया हों, दोनों को बिलुढ़े हुए !

युवती की वेश-भूषा मनोमोहक थी। मुख-मण्डल गौर-वर्ण का और आकर्षक था। कण्ठ में एक विशेष प्रकार का लालित्य था। और हाव-भाव में जावण्य !

मैंने पीछे घुम कर देखा—गुल गायब।

और हसीना के उस उन्मत्त आलिंगन से मेरा सारा शरीर कण्टकित हो गया। आज तक किसी स्त्री ने इतने नजदीक से, इतने उन्मत्त तरीके से और इस तरह मेरा स्पर्श नहीं किया था। और हसीना मेरे गले से लिपट कर बोली—“निष्ठुर, तुम कहाँ थे ?... मैं तुम्हारे विरह में तड़प-तड़प कर मर रही हूँ और तुम्हें खबर तक नहीं !... प्रियतम, निष्ठुर, प्यारे !”

मेरे यौवन का एक-एक कण उद्वेलित हो उठा। रोम-रोम चंचल हो उठे। उसके निःश्वास की सुरभि-हिलोर मेरी नाक से टकरा रही थी। उसने अपना आँखें मेरी आँखों में गड़ा कर पूछा—“बताओ, प्यारे ! इतने दिनों तक कहाँ थे ?... हाय, क्या मुझे भूल गये ?... ओह, इधर देखो, निर्दय... इधर देखो... मैं हूँ तुम्हारी हसीना... हसीना... और उसने दोनों हाथों से मेरी ठुड़ी पकड़ कर मेरा मुँह ऊपर की तरफ कर दिया। बलात् आँखें चार हो गईं और जो मैंने उसका रूप देखा, उन्मत्त यौवन देखा, हृदय की विह्वलता देखी... मैं धीरे-धीरे संज्ञा खोने लगा।

तो क्या सच... यह सच है ?

इस लोक में मुझे मालूम पड़ा जैसे मैं स्वप्न देख रहा होऊँ अपने अस्तित्व पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैं संज्ञा-हीन होने लगा। पाँव जड़खड़ाने लगे। आँखों के आगे अन्धकार छा गया। और मैं निश्चय गिर पड़ता, यदि इसीना खींच कर जबरदस्ती मुझे कोच पर न बिठा देती !

और मैं निरवलम्ब-सा कोच में बैठ गया। लजाट से, वक्ष से, पृष्ठ से, समस्त शरीर से पसीने का फव्वारा फूट चला। वह सामने बैठकर पंखा झलने लगी।

कब तक इस हालत में रहा, पता नहीं ! और जब मेरा मित्राज कुछ ठीक हुआ, तब इसीना एक थाल में भर कर मेवे, फल और मिठाई ले आई।

“नाइता कर लो।”

मैंने पहले तो इनकार किया; लेकिन एक परी के आगे नकार कब तक टिक सकता है ? मुझे लाचार होकर खाना ही पड़ा। और जब खा-पी चुका, तब इसीना ने पुकारा—“गुल !”

गुल ने कहा—हाँ।

इसीना बोली—“पान ले आओ।” और पाँच रुपये के नोट उसकी उँगलियों में फँसा दिये।

पान के लिये फिर पाँच रुपये।... ओह, यह गुल... और यह इसीना... और मैं !

गुल आ गया। पान खा कर मैंने कहा—“इसीना, अब मैं जाना चाहता हूँ।”

“हाय !” इसीना ने आँखों में आँसू भर कर कहा—“कितनी कोशिश के बाद तुम मिले, भी, तो कहते हो कि मैं जाऊँगा। जरा ठहर जाओगे, तो क्या बिगड़ जायगा ? मैं तुम से कुछ नहीं चाहता। सिर्फ यहाँ बैठे रहो। मैं तुम्हारी सेवा करूँ और तुम्हारी सूरत देखता रहूँ।

मुझे और किसी चीज की ख्वाहिश नहीं है। भगवान् ने सब कुछ दिया है।”

मैंने कहा — “हसीना, मैं कल जरूर आऊँगा।”

“तो वादा करो कि जरूर आओगे। मेरी छाती पर हाथ रख कर कहो कि जरूर आओगे।”

इतना कह कर उसने मेरे हाथ को खींच कर अपनी छाती पर रख लिया। आवेश से मेरी देह थरथर काँपने लगी। उसका वह वक्ष मैंने उँगलियों से अनुभव किया कि वहाँ आग थी। मेरा हाथ जलने लगा। मैंने तत्काल हाथ खींच लिया।

हसीना ने रो कर कहा—“कल गुल जायगा, तुम्हें ले आयागा। तुम शायद भूल जाओ।”

मैंने कहा — “गुल जाय तो बेहतर, नहीं तो मैं खुद ही आ जाऊँगा।”

और चलते-चलते मैंने देखा, चिक की आड़ से हसीना हसरत भरी निगाहों से मुझे देख रही थी और थोड़ी ही देर में उसके सिसकने की आवाज आई।

मेरा दिल मोम-सा पिघल गया।

× × × × ×

वह रात मेरे लिये सबसे ज्यादा खतरनाक साबित हुई। तमाम रात मैं जागता रहा। नींद हिरन हो गई थी। तरह-तरह की चिन्ताएँ दिल और दिमाग को परीक्षण करती रहीं। ज्यों-ही जरा पलकें लगने को होतीं, त्यों-ही हसीना की तस्वीर आँखों में खिच आती और मैं चौंक कर ठठ बैठता। हसीना का सौंदर्य, उसकी मुस्कान, उसका आँखिगन... उसकी बातें और फिर उसके आँसू... रह-रह कर मेरे दिल में टीस पैदा कर देते थे और मैं व्याकुल हो उठता था।

हसीना को क्या पड़ी है, जो मुझ पर फिदा है ! क्या मेरी खूब-सूरती पर... या मेरी जवानों पर... या मेरी दौलत पर... आखिर, बात

क्या है ? ...कुछ समझ में नहीं आता । अगर वह चाहती, तो उसके पास इतना रूप है कि उसके इशारों पर बड़े बड़े आदमी नाचते-फिरते !
... फिर भी, वह मुझ पर ... मामला क्या है ?

रात किसी तरह कट ही गई । सुबह मेरे ससुर साहब के किसी दोस्त ने मुझे निमंत्रण दे दिया । रिश्ते में वह भी कोई ऐसे-ही लगते थे । मैं वहाँ जाने की तैयारी करने लगा । दिन के दस बज रहे थे । ज्यों-ही कोट पहन कर घर से बिदा हुआ, त्यों-ही गुल ने आकर सज्जाम किया । और मेरे हाथ में एक चिट्ठी रख दी ।

लिफाफा था, बड़ा ही खूबसूरत । गहरे नीले रंग का । मैंने जल्दी-जल्दी उसे फाड़ डाला । खोला तो भीतर से केवड़े की खुशबू उमड़ बड़ी । दिमाग तर हो गया ।

गुल ने बताया—“यह खत हसीना ने दिया है ।”

मैंने कहा—“और कुछ भी ?”

“जो कुछ है” वह बोला—“सब खत में लिखा है !”

मैंने कहा—“हसीना से मेरा आदाब कह देना । मैं शाम को जरूर आऊँगा । अभी एक दावत खाने जा रहा हूँ ।”

गुल चला गया ।

मैंने खत पढ़ने के लिये निकाला । लेकिन वह उर्दू में लिखा हुआ था । मैं पढ़ता, तो कैसे ? उर्दू से वाकिफ नहीं था । खत कोट की जेब में डाल दिया यह सोच कर कि खाना खाने के बाद किसी से पढ़वाऊँगा ।

पहुँचा, जिनके घर से निमंत्रण आया था । लोग बड़ी खुशी से मिले । मेहमान बाबू ... मेहमान बाबू ... बच्चों, स्त्रियों और लड़कियों में तमाम शोर हो गया । मैं अन्दर खाने गया । और कोट को बैठकखाने में एक खंटी पर लटका दिया ।

वही परिवार में एक लड़का था । बड़ा ही बदमाश । उसकी आदत थी कि अक्सर वह मेहमानों की पाकिट में हाथ डाल देता और

उसमें जो कुछ पाता, लेकर, नौ-दो-ग्यारह हो जाता। सो, उस दिन उसने मुझ पर भी हाथ साफ किया। मगर मेरी जेब में सिवा उस खत के और था ही क्या ? और उसने खत निकाल लिया। कौतूहलपूर्वक उसे पढ़ा और पढ़कर उस बदमाश लड़के को इतनी तमोज हो गई कि उसने अपने बड़े भैया को वह चिट्ठी दिखला दी। चिट्ठी देखकर, न मालूम, उन्होंने क्या खयाल किया कि वह सीधे मेरे ससुर साहब के पास पहुँचे और उनको खत की सारी बातें पढ़कर सुना दीं।

इधर मैं खा रहा था और उधर मेरा खत इस हाथ से उस हाथ में चक्कर लगा रहा था। खाना खा चुकने के बाद मैंने कोट पहना और अपने डेरे पर पहुँचा।

मैं डेरे पर आ रहा था, खुश...खुशी यही कि शाम को फिर हसीना से मुलाकात होगी। कितनी खूबसूरत, कितनी नेक दिल और मुझे कितना चाहती है...कि अपने सामने लाल-पीली आँखें किये हुये अपने ससुर साहब को पाया। मैंने सोचा, मामला बेइब है...मगर बात क्या है ?

“तुम अभी इस ट्रेन से पटने चले जाओ।” वह बोले—“देखो, अभी कौन-सी ट्रेन जाती है ?”

मैंने कहा - “जल्दी क्या है ?...कल इतमीनान से जाऊँगा।”

वह गरज कर बोले -- “नहीं, अभी जाना होगा। अब लखनऊ में एक पल भा तुम्हारा टिकना ठीक नहीं।” और उन्होंने नौकर को पुकारा—“बाबू का सामान बांध कर स्टेशन पर पहुँचावो।”

जी मसोस कर मैं स्टेशन की तरफ रवाना हुआ। और उसी रात को पटना पहुँच गया। यहाँ आकर हसीना के खत की तलाश की, तो मालूम हुआ कि वह गायब है ! मैं फौरन समझ गया, यह उसी खत का करतूत है... मगर उस खत में क्या लिखा था ?

× × × × ×

कहानी शेष हो गयी थी। वृद्ध महोदय चुप हो गये। बड़कों ने

एक बारगी शोर मचाया “.....मगर आपने यह तो बतलाया ही नहीं कि आखिर उस खत में ऐसी कौन सी बात थी ?”

“यह तो मैं भी नहीं जानता ।”

“मैं कह दूँ ?” चन्द्रशेखर ने कहा ।

“हाँ . हाँ” वृद्ध महोदय ने कहा—“मालूम पड़ता है, आप न्योतिषी भी हैं !”

“इसमें क्या शक ?” चन्द्रशेखर बोला—“लेकिन, इसका मिहनताना क्या देंगे ?”

“मेरा बुढ़ापा ले लेना !” वृद्ध ने हो-हो कर कहा और सभी लड़के चिल्ला उठे “और हसीना.....दादा ?.....और, हसीना ?”

इतने में गाड़ी भटनी स्टेशन पर रुक गई । और हमारे वृद्ध महाशय अपना बिस्तर सँभाल कर उतर पड़े—“हो सके तो गुज़ की नलाश करना ।”

× × × × ×

शादी हो गई ।

बारात में खूब ही चहल-पहल रही । देखा, लखनऊ देखा । खूब घूम-घूम कर देखा । मगर न गुज़ मिजा और न हसीना । हाँ, हजरतगंज की वह पान की दूकान तब भी वहीं, उसी जगह पर थी । एक बूढ़ा पानवाला बैठा था । हमने उससे गुज़ के बारे में पूछा । उसने बतलाया कि हाँ, एक हसीन लड़का था, इसी मोहल्ले में जमाना हो गया कि वह उसे नहीं दाखता । मालूम नहीं, कहाँ चला गया वह ?

और, हसीना . वह कहाँ होगी ?

चार दिन के आनन्द-विनोद के बाद हम लखनऊ से लौट पड़े । एक स्मृति थी । सभी अपनी-अपनी धुन में मस्त थे । कोई दुलहिन की चर्चा कर रहा था, कोई दहेज की बात कर रहा था और कोई शहर की खूबसूरती और नजाकत पर ही जट्ट हो रहा था ।

मेरी आँखों में एक तस्वीर थी और उसमें था गल और हसीना
हसीना और गुन !

अँधेरी रात में गाढ़ी हवा को चारती हुई वेग से बढ़ा आ रहा
था । मैंने सजल-नयनों से चन्द्रशेखर की ओर देखा । वह खिड़की से
बाहर सर निकाल कर, अँधेरे में न मालूम, क्या देख रहा था और गुन-
गना रहा था—“जिन्दगी में आज पहली बार आये जखनऊ !”

मेरी आँखों से दो बूंद आँसू टपक पड़े ।



प्रेम का अनुभव

सेवा में श्रीमती अनुराधा देवी,
मोतीसागर, नागपुर ।

महोदया,

मुझे आप से व्यक्तिगत परिचय नहीं । लेकिन, मैं आपको उतना ही जानता हूँ, जितना भ्रमर पुष्प को, शलभ दीपक को और कवि अपनी कविता को । यह यथार्थ सत्य है । मैं अपनी प्रशंसा नहीं करता । आपने, कुछ ही दिनों में, साहित्य के क्षेत्र में स्पृहणीय ख्याति प्राप्त की है । मैं आपके गणों पर मुग्ध हूँ । मेरे हृदय-मन्दिर में आपका प्रेम-प्रतिमा प्रतिष्ठित है । दिन में या रात में प्रायः मैं आपका स्वप्न देखता हूँ । घर के लोग मुझे पागल कहते हैं । पर, मैं ऐसे लोगों की बिल्कुल परवाह नहीं करता । आप ही कहिये, प्रेम पागलपन नहीं, तो क्या है ? आज तक कोई भी ऐसा प्रेमी हुआ, जिसकी भुल ठीक रही हो ? अंगरेजी के किसी महा कवि ने कहा है, 'प्रेम ईश्वर है, । मैं उसकी

जगह होता, तो कहता, बेवकूफ ! प्रेम नशा है । ऐसा नशा कि देखते ही जादू की तरह सर पर चढ़ कर बोले । आपको शायद यह मालूम नहीं कि मैं आपको प्यार करता हूँ । इतना प्यार कि अब तक किसी ने नहीं किया होगा । मेरा ख्याल है कि मेरी हालत का आपको कुछ भी पता नहीं । नहीं तो, मुमकिन नहीं कि आप इस तरह बेखबर हो जातीं । आखिर, सत्र की भी इन्तिहा होता है । जब दिल काबू से बाहर होने लगा तो मजबूर होकर इसकी सूचना आपको देनी ही पड़ी । इसके लिये कृपा कर मुझे माफ करेंगी । अगर, माफ करने में कोई एतराज हो, तो सजा ही दे डालिये । मैं इसे भी अपना सौभाग्य ही समझूंगा । पत्र की घोर प्रतीक्षा में,

आपका—प्रेमकुमार ।

प्रिय महाशया,

एक सप्ताह से अधिक हो गया । आपका उत्तर नहीं आया । प्रतीक्षा करते-करते आँखें सूज गईं । मेरी इतना अनुनय विनय क्या निष्फल हो जायगी ? मैं सच कहता हूँ, आपके बिना मैं मर जाऊंगा । वास्तव में मैं आपको प्यार करता हूँ । मेरे पास संसार का जो भी प्रेम है, सब आपको समर्पित है । आप स्वाकार कीजिये और शीघ्र ही उत्तर दीजिये ।

आपका—प्रेमकुमार ।

महोदया,

महीना बीतने को आया, लेकिन, आपने एक पंक्ति भी लिखकर नहीं भेजी । क्या नारी का हृदय पत्थर का तो नहीं होता ? आज मैं बाजार से जहर खरीद कर ले आया हूँ । एक सप्ताह तक और आपकी प्रतीक्षा करूँगा । इसके बाद जहर खाकर सो रहूँगा । फिर, आप भी अफसोस करेंगी, कोई प्रेमी था । मगर, तब पछुताने से ही क्या होगा ? आज मैं आपको आखिरी अल्टिमेटम देता हूँ । मेरा जीवन आपके हाथ है । आपकी इच्छा नहीं होगी, तो मेरा बचना मुश्किल है । फिर आप

मुझे दोष न देंगे। इस वक्त आप खयाल नहीं करता, तो, कयामत के बाद करके ही क्या होगा? आप कहेंगी यह प्रथम परिचय में ही क्या लेकिन, मैं बताऊँ! मेरे बिचार से, संसार में प्रेम ही एक ऐसी वस्तु है जिसे लोगों को झटपट कर लेना चाहिये। फिर मैंने अगर जल्दी की, तो बुरा ही क्या? इस बार चिट्ठा 'बैरन' भेजता हूँ। आशा है, एक दुअन्ना अखरेगा नहीं। जवाब जरूर दीजिये। नहीं, तो आप एक युवक-इत्या की पाप-भागिनी होंगी। ऐसा युवक जिसके विषय में दुनिया की बड़ी उच्च धारणाएँ हैं और जो एक दिन संसार का महान उपकार करेगा।

आपका—प्रेमकुमार।

महाशय,

आप घर के शरीफ मालूम होते हैं, लेकिन, आपकी बातें गुण्डों का-सी हैं। मेरे साथ कभी ऐसी पागलपन की बातें मत किया कीजिये। मैं आपके खतों का जवाब देने में सर्वथा असमर्थ हूँ। मैं आपके समान आवारा लड़कों को खूब पहचानती हूँ। आपको कोई अधिकार नहीं, कि मुझे पत्र लिखें, अगर लिखा भी तो वह रई की टोकरी के हवाले किया जायगा। भविष्य के लिये अभी सावधान हो जाइये। बेहतर यही है।

भवदीया अनुराधा।

प्रियवरी

मेरे हृदय में प्रेम करने की उत्कट इच्छा है। आपको अनुमान भी नहीं होगा कि आपका पत्र पाकर मैं कितना प्रसन्न हुआ। सावन में अन्धों को चारों तरफ हरियाली ही सूझती है। मैं भी तो प्रेम का अन्धा हूँ। मैं भी यदि अपनी चारों ओर प्रेम को ही देखूँ, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? आपके शब्दों ने मुझ पर अमृत का काम किया, मेरी आशालता खिल उठी। आप निश्चय जानिये, मैं कोई साधारण प्रेमी नहीं हूँ, जो पत्तों की आहट से घबड़ा जाऊँ। मैं जानता हूँ, यह

मागं हा ऐसा है, जिसमें फूल के बदले कांटे बिछे रहते हैं ! शुरू-शुरू में सभी प्रेमियों की यही अवस्था होती है । हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि मेरे स्थान पर यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता, तो निस्सन्देह वह आत्मघात कर लेता अथवा घर छोड़ कर भाग जाता । परन्तु, मैंने जो कहा, मैं साधारण प्रेमी नहीं हूँ । मेरी नसों में मजनु की तड़प है, फरहाद की आग है और है युग-युगान्त के प्रेमियों की आकुल पुकार ! आपके अभिशाप को भी मैं आशीर्वाद के रूप में ही ग्रहण करूँगा । अपने पत्र में आपने मेरे लिये जिन कोमल वचनों का प्रयोग किया है, वे मुझे बहुत मधुर लगे । मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूँ । भाव से या कुभाव से, इच्छा से या अनिच्छा से आपका ऐसा ही कृपा-दृष्टि मुझ पर रहे, मैं यही चाहता हूँ । जीवन में और कोई आकांक्षा नहीं । आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि आप मुझे नहीं भूलेंगे ।

आपका — प्रेमकुमार ।

महाशय,

आप भी विचित्र व्यक्ति जान पड़ते हैं । किसी कुमारी लड़की को इस तरह सम्बोधन करना क्या उचित है ? अगर कोई जान ले ! मैंने आपको इतना मना किया, लेकिन, आपने नहीं माना । मैं फिर भी कहती हूँ, इसका नतीजा अच्छा नहीं होगा । समय के रहते ही चेत जाना चतुरों का काम है । व्यर्थ के विवाद से क्या प्रयोजन ? मैं नहीं समझती कि आप इतनी मूर्ख होंगे । मुझे हर्गिज हर्गिज खत न लिखिये । शिष्टाचार के नाते इतना भी मैं आपको लिख देती हूँ । नहीं तो, आपका पत्र रही की टोकरी में जरूर चला गया था । मेरे पिताजी को अगर इस बात की खबर हो गई, तो दोनों का कुशल नहीं । आप अभी युवक हैं । मैं भी युवती हूँ । हम दोनों का यह व्यवहार वांछनीय नहीं । मैं अच्छा लिखती हूँ या बुरा, इससे आपको मतलब ? आप कौन होते, जो इस तरह मेरी प्रशंसाओं के पुल बाँधते ? मुझे आपकी श्रद्धा की बिल्कुल जरूरत नहीं । मैं फिर कहती हूँ, आप मुझे पत्र न

लिखिये । नहीं तो, बाध्य होकर मुझे निरुत्तर हो जाना पड़ेगा ।

भवदीया—अनुराधा ।

दयामयी,

कृपा-पत्र के लिये आपको अनेक धन्यवाद । मेरे पास शब्द नहीं, जो आपके गुण गाऊँ । सारा दिन हिन्दीशब्दसागर और अमर-कोष उलटाते बीत गया, कालिदास और रविवन्दनाथ का ग्रन्थावली देख डाली, लेकिन आपके योग्य न कोई उपमा मिली और न कोई उपयुक्त अलङ्कार । आपको शैली अद्भुत है । लिखने का ढंग नया है । मैं यदि आपके चरणों में भी स्थान पा सकूँ तो मेरा अहोभाग्य ! व्यङ्ग तो आप इतना सुन्दर लिख सकती हैं कि क्या 'शा' और 'प्रेम' चुभते कि साँधे दिल के आर-पार । यह तो तारीफ मेरी कीजिये कि सब बर्दाश्त करता हूँ । श्री लेखिकाओं में तो आप बेजोड़ हैं ही, पुरुष भी सात जन्म तक आपके आगे पानी भरेंगे संसार का कोई भी जोवित साहित्यिक आपकी प्रतिभा के सम्मुख ठहर नहीं सकता मुकाबिला करना तो दूर की बात है । आपके समान प्रतिभा-शालिनी महिला यदि योरोप या अमेरिका में पैदा होता, तो इस महायुद्ध के जमाने में भी लॉग हथियार फेंक कर उसे सर पर उठा लेते । पर, यह हिन्दुस्तान है और हिन्दुस्तान की गई गुजरी भाषा हिन्दी । हिन्दीवालों का यह दुर्भाग्य ही है, जिसने अभी तक आपको अच्छी तरह पहचाना नहीं । हिन्दी के हिमायती, अभी अपने कलाकारों की कद्र करना नहीं जानते । मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं आपके विषय में एक लेख लिखूँ और उसे हिन्दी के किसी सर्व-श्रेष्ठ मासिक पत्रमें प्रकाशित कराऊँ । फिर देखिये, दूसरे-ही दिन किस तरह आपके नाम का डंका सारा दुनिया में बज जाता है । सभी सम्पादकों से मेरी दोस्ती है । जिस तरह आप कुमारी हैं, उसी तरह मेरा वह प्रस्तावित लेख भी पहला ही होगा । दोस्तों के प्रस्ताव को ठुकरा कर और सम्पादकों के तकाजों की अवहेलना करके भी अब-तक मैंने एक भी लेख नहीं लिखा, क्योंकि, लेख के उपयुक्त

कोई योग्य पात्र हो नहीं मिला । और इसी प्रकार आज-तक मैंने किसी युवती या प्रौढ़ा को प्रेम की दृष्टि से भी नहीं देखा, क्योंकि, प्रेम की मथुर वेदना को ठीक-ठीक समझनेवाली कोई लड़की मेरे देखने में नहीं आई । यों तो कलकत्ते दिल्ली या शिमले में कितनी खूबसूरत कड़ी जाने वाली छोकड़ियों को तितलियों की तरह इधर-उधर फुदकते देखा है । लेकिन, आपके सर की कसम खाकर कहता हूँ, उनमें एक भी मेरे ध्यान को आकर्षित नहीं कर सकी । मैं सचमुच बहुत खुश किस्मत हूँ कि आज सोना में सुगन्ध मिल गई । दोनों व्यक्तियों को एक ही स्थान पर पा लिया । आपको इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये । नहीं, तो, हिन्दी संसार एक ऐसे आलाचक की लेखनी के महाप्रसाद से बंचित हो जायगा, जिसके अभाव में सारी दुनिया रो-रो कर मर जायगी । अधिक आपको क्या लिखूँ ? शीघ्र ही अनुमति दीजिए कि मैं अपना काम शुरू कर दूँ ।

आपका—प्रेमकुमार ।

प्रिय महाशय,

मेरे विषय में जो आपने धारणा बनाई है, उसमें सत्य का अपेक्षा अनुकूलता का अंश ही अधिक है । हिन्दी के सम्बन्ध में आपका शिकायत बिल्कुल ठीक है । मैं भी इसे महसूस करती हूँ । यों तो मैंने साहित्य की कोई सेवा नहीं की । भला दो चार कहानियों और दस-बीस कविताओं से किसी भाषा का क्या बनता-बिगड़ता है ? फिर भी, यदि आपको पसन्द हो, तो आप लिख सकते हैं । मेरा एतराज ही क्या हो सकता है ? हाँ, अपने लेख में इतना जरूर लिख दीजिएगा कि मैंने अर्थ साधन के लिये साहित्य—सेवा नहीं की । कला की उपासना ही मेरा प्रधान लक्ष्य रहा है । मैं कभी अर्थ के अभाव में नहीं रही, जो कुछ लिखा, निरर्थक ही । और हाँ, आप कृपया पत्रोत्तर देने का कष्ट नहीं कीजिये । मैं डरती हूँ, शायद कोई ... दुनिया बड़ी खोटी है

कुमारी अनुराधा देवी,

आपका भय स्वाभाविक है। जमाना सचमुच अच्छा नहीं है। लोग यह देखना बर्दाश्त नहीं कर सकते कि दो युवक-युवतियाँ आपस में प्रेम करें। यद्यपि स्वयं वे सात घाट का पानी पिये रहते हैं। फिर भी हमें हिम्मत करनी चाहिये। समाज के हाथों में कठपुतली की तरह कबलक आज की तरुणाई नाचती रहेगी? मैं प्रेम का भूखा हूँ। मेरा सारा जीवन भूखा है। जिन्दगी में कभी मैंने प्रेम किया हो, ऐसा याद नहीं पड़ता। हाँ, आप से क्या छिपाऊँ? एकबार ऐसी गलती की थी जरूर, मगर वह सफल नहीं हुई। जब मैं लॉकालेज में पढ़ता था तब एक हारिजन लड़की के प्रेम-पाश में अनायास मैं आवद्ध हो गया। आपकी तरह न वह खूबसूरत थी, न अमीर और न पढ़ी लिखी। लेकिन, दिल ही तो है। वह रोज मेरे होस्टल में झाड़ू-बुहारू देने आती थी। एक दिन मैंने उससे कहा जरा मेरे कमरे को भी साफ करदे। आज नौकर बाहर गया है। वह हाँशियार तो जरूर न थी। हाँ, पैसे का लोभ हो आया। और, उ्यों ही वह मेरे कमरे के अन्दर आई, त्यों ही मैंने भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया। वह बोली, आप निकल भी तो जाइये, धूल उड़ेगा। मैंने कहा, तुम अपना काम करो। वह मुस्करा दी। मैं बेसुध होकर उसके बदन से लिपट गया। इतने में बाहर से किसीने दरवाजे पर धक्का दिया—‘बाबू, ओ बाबू!’ मेरे तो होश उड़ गये। धम्म से चारपाई पर गिर पड़ा। और उस लड़की ने जो दरवाजा खोला, तो नौकर बड़बड़ा उठा ‘चल हरामजादी, मैं तेरा बेहयाई निकालता हूँ।’ सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब के पास भी शिकायत पहुँची और मैं रेस्टिकेट होते २ बच गया। होस्टल में शोर हो गया। लड़की के पिता से माफी माँगनी पड़ी और तब कहीं मामला ठंडा पड़ा। उस दिन से मेरा साहस नहीं हुआ कि किसी लड़की को तरफ आँख उठा कर भी देखूँ। सुबह का भूला अगर शाम को घर आजाये, तो वह भूला नहीं कहलाता! इस जिहाज से मैं चिर-कुमार ही हूँ और मेरा

अधिकार है कि किसी कुमारी से प्रेम को भिक्षा माँग सकूँ । उपन्यास और कहानियों में पढ़ता हूँ, तो लगता है, जैसे सारा संसार प्रेम-मय ही हो । अखबारों में रोज ऐसी खबरें छपती हैं । अदालतों में रोज ही इस तरह के सनसनी-खेज मामले आते हैं । विदेशों की बातें तो और भी गजब की होती हैं । मगर, मेरे लिये, मानो सारी दुनियाँ ही उजाड़ है । मेरे वास्ते कोई युवती पागल नहीं । मेरे लिये किसी नारी के हृदय में प्रेम का स्थान नहीं । यह असम्भव नहीं, यद्यपि कठिन अवश्य है । और आज मेरा परिश्रम सफल हुआ । मैंने आपको पा लिया । अब मैं आपको कदापि छोड़ नहीं सकता । आप मुझे जेल भिजवादे, चाहे फाँसी पर लटकवा दें, आपकी खुशी । मैं आपको तब-तक प्रेम करता रहूँगा, जब-तक भगवान न करे कि ऐसा हो हो हम दोनों में से कोई मर न जाए ! लेख तैयार हो रहा है । रात दिन मेहनत कर रहा हूँ । बहुत दुबला हो गया हूँ । कृपा कर जल्द ही जीवन सम्बन्धी कुछ नोट्स भेजिए । और, किसी योग्य वैद्य से पुष्टि कारक औषधि । आप न मानें सही, मैं तो हूँ न आपका भावी

भवदीय—प्रेमकुमार ।

पुनश्च- इधर एक बहुत सुन्दर चीज आपकी देखी । पढ़कर दिख खुश हो गया । उस दिन, दिन-भर मैं आपका उस कहानी को लेकर बाजार में चक्कर लगाता रहा । अपने मित्रों को सुनाया, परिवार के लोगों को सुनाया । सुहल्लेवालों को सुनाया और फिर भी जब सन्तोष नहीं हुआ, तब शहर के इक्के रिश्तेवालों की सभा में, स्पीच देने के बहाने उसी कहानी को पढ़कर सुना दिया । मार-पीट हुई, जूते चले, सर फूटा, मगर, किसके लिये ? अजी, यह चकता ही है । पर, कुछ आपका भी कर्त्तव्य है । मुझे आश्चर्य होता है कि जिस व्यक्ति की कहानियों और कविताओं में प्रेम का सागर लहराता है, उसके वास्तविक जीवन में रसका एक बून्द भी नहीं । क्या मैं अपने लेख में इस बात की चर्चा कर दूँ ? आप बुरा तो न मानेंगी ? नोट्स

जल्द भेजिए ।

आपका—प्रेमकुमार ।

महाशय,

मुझे सख्त अफसोस है कि मेरे बारम्बार मना करने पर भी आप अपनी बेहूदी हरकतों से बाज नहीं आये ! यह आखिरी चेतावनी मैं आपको देना चाहती हूँ । इसके बाद भी अगर कुछ हुआ, तो इसके जिम्मेवार मैं नहीं, आप स्वयं होंगे । आज्ञानुसार नोट्स भेज रही हूँ और अपना एक फोटो भी । फोटो यद्यपि खूब सुन्दर और साफ नहीं है । मगर, इससे क्या ? आप सम्पादकजी से अनुरोध करेंगे कि कृपाकर लेख के साथ वे इसे भी प्रकाशित कर दें । तिरहुत समाचार के एडीटर से मेरी भी जान पहचान है । उन्हीं के पास लेख दें, तो और उत्तम ! नहीं तो जहाँ आपकी इच्छा ! अब मैं आपके साथ कोई पत्र व्यवहार नहीं रख सकूंगी । क्योंकि मैं बीमार हूँ ।

भवदीया—अनुराधा ।

प्रिये,

पत्र और पत्र में लिखी सारी चीजें वक्त पर मिल गईं । अब मुझसे बर्दाश्त नहीं होता, इसलिये 'तुम' का सम्बोधन करता हूँ । आखिर यह दूरी क्यों ? हम बहुत निकट आगये हैं । एक दूसरे को भला-भाँति जान गये हैं । फिर यह पर्दा कैसा ? आओ, हम आज घुल-मिल कर दो बातें कर लें । बुरा मान जाने का तो कोई सवाल ही नहीं होना चाहिये । मेरा अनुमान है कि तुम भी इसे पसन्द करोगी । तुम मुझसे घबराती क्यों हो ? मैं जवान आदमी हूँ, तो क्या तुम बूढ़ी हो गई ? हमारे सामने राधा और कृष्ण की प्रेम-कहानी मौजूद है । उन्हीं को आदर्श मान कर चलो । तुम तो विवाहिता भी नहीं हो, गोपियाँ अपने पति तक को छोड़ कर, अँधेरी रात में, कृष्ण के पास, यमुना-तट पर पहुँच जाती थीं । समाज तो पापी है । उसे छोड़ो और मेरे कंठ में अपना कोमल स्वर मिलाकर आओ, कहो—'हृदय जखन

उठे छे बासना, जगते तखन किसेर भय किसेर लज्जा ?'

यह सच है कि फोटो खराब नहीं, लेकिन, कहीं तुम्हारा अनुपम सौन्दर्य और कहीं यह फोटो ? तुम्हारी छाया तक भी इसे नहीं छू गई है। मुझे उस फोटोग्राफर पर तरस आता है और रसक भी। मेरे सामने अगर वह होता, तो मैं काफी मरम्मत करता उसकी। खैर, जाने दो। लेकिन, मैं चाहता हूँ कि तुम कोई पोज दो। मेरा एक दोस्त बड़ा अच्छा फोटोग्राफर है। यहीं इलाहाबाद में रहता है। तुम यहाँ एकबार आ जाओ। मैं बहुत सुन्दर तस्वीर तुम्हारी खिचवा दूँ। बिल्कुल सिनेमा अभिनेत्रियों के पोज में। लोग देखें, तो दातों-तले उँगली दबा लें।

तुम्हारी क्या राय है ? मैं तो नहीं चाहता कि इतने सुन्दर लेख के साथ तुम्हारी ऐसी भद्दी तस्वीर जाय !

तुम्हारा—प्रेमकुमार।

महाशय,

घृष्टता का हृद हो गई। मुझे क्षमा कीजिये। मैं बीमार हूँ। कहीं आने जाने से मजबूर हूँ। मेरा वही फोटो जायगा। यदि वह फोटो पसन्द नहीं, तो, केवल लेख ही भेज दीजिये। मेरे पास इस वक्त अपना कोई दूसरा फोटो भी नहीं, जिसे भेजूँ !

भवदीया—अनुराधा !

प्रियतमे,

क्या सचमुच तुम बीमार हो ? मैंने तो समझा था, खत नहीं लिखने का बहाना है। तुम्हारी बीमारी की खबर ने मुझे परीशान कर दिया। लेख भी नहीं लिखा जाता। कलेजा मुंह को आता है। आह, इस वक्त यदि मेरे पर हाँते। कलम लेकर बैठता हूँ, तो आँसुओं से कागज भीग जाता है। सोने जाता हूँ, तो रोते-रोते सुबह हो जाती है। मैं सचमुच पागल हो जाऊँगा। क्या मैं तुम्हारे बदले बीमार नहीं हो सकता ? मैं तुम्हारी सेवा करना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे लिखो

कि मैं आ जाऊँ। आखिर पति का काम ही क्या है ? मैं तुम्हारे बाजों में कंधी कर दूँगा, सर में तेल लगा दूँगा और जरूरत पड़ने पर पैर भी.....मुझे अवसर दो। तुम्हें कोई तकलीफ नहीं दूँगा। मुझे पाकर तुम खुश हो जाओगी। पति का पति और नौकर का नौकर। मेरे-जैसा मालायक और कौन होगा दुनिया में ? मुझे बुलाओ। मैं जल्द से जल्द तुम्हारे पास आना चाहता हूँ। सोचो तो, मैं कितना भला आदमी हूँ। मेरे साथ विवाह कर कोई भी युवती चिर सुहागिनी रह सकती है। जल्द उत्तर दो।

तुम्हारा प्रेमी, प्रेमकुमार।

प्रिय महोदय,

आप फिक्र मत करें। लेख फौरन लिख डालें और तिरहुत-समाचार के सम्पादक के पास भेज दें। मैं बीमार हूँ सही मगर, जल्द ही अच्छी हो जाऊँगा। मुझसे मुलाकात नहीं हो सकेगी। कृपया आने का कष्ट न करें। हवा-पानी बदलने के खयाल से मैं आज ही देहरादून जा रही हूँ। नमस्ते।

भवदीया—अनुराधा।

अनुराधा,

तुम कितनी कठोर हो ! पहाड़ पर चली गई, लेकिन, मुझे साथ नहीं लिया। वहाँ तुम्हारी सेवा कौन करेगा ? और मेरे लेख की पूर्ति कैसे होगी ? कहीं तुम्हारी बीमारी बढ़ गई, तो.....? मैं तुम्हें एकबार जी भर कर देख भी नहीं सका। हसरतें बाँकी हो रह गईं। तमाम भरमान अधूरे ही रह गये। हर घड़ी तुम्हारी तस्वीर को हृदय से लगाये रोता रहता हूँ। आँखों से आँसू की नदियाँ बहती हैं। मेरा जीवन-वसंत उजार हो गया है ! भयानक मरुभूमि में मैं भटक रहा हूँ। कहीं सहारा नहीं मिलता। पता नहीं, कब तक तुम वापिस आओगी ? और तुमने अपना ठिकाना भी तो नहीं बिछा कि मैं खुद वहाँ पहुँच जाता। हे ईश्वर ! कितना संयोग था। घर से दूर, शहर से दूर, लोगों की शनि

दृष्टि से दूर, देहरादून में""उल्लूकते हुए करने के किनारे, हर-हर करते कोई गंगा के तट पर, पहाड़ियों पर""चाँदनी रात में""देखो, देखो, स्मरण-मात्र से मेरा सारा शरीर रोमाञ्चित हो रहा है। उस एकान्त को हम स्वर्ग बनाते। ओ, मेरे हृदय-मन्दिर की पाषाण-प्रतिमे क्या सचमुच तुम रुधिर-मांस की बनी नहीं हो? काश कि तुम मेरे अन्तरतम में पैठ कर देखती। निर्मम ! मुझे ऐसी आशा नहीं थी कि इस तरह तुम चुपचाप""तुम्हारे उपवन में क्या फूल नहीं खिलते ? कलियाँ नहीं हँसती ? चातक नहीं पुकारते ? कोयल नहीं कूकती ? मैं कैसे मान लूँ कि तुम्हारे हृदय में प्रेम नहीं ? आकाश में पुष्प खिल सकते हैं, परन्तु, अठारह साल की तरुणी का हृदय मरुभूमि के समान शुष्क हो !""असम्भव। लेख अधूरा पड़ा है। नोट्स बेकार हो रहे हैं। तुम्हारा फोटो भी नहीं आया। मेरे प्राण विषण्ण हैं। मैं क्या करूँ, तुम्हीं बताओ ओ मेरी राना !

तुम्हारा अभागा प्रेमी—प्रेमकुमार।

प्रिय प्रेमकुमार जी,

मैं देहरादून नहीं जा सकी, क्योंकि मैं बाँमार भाँ तो नहीं था। हाँ, आपके पत्र का जवाब नहीं दे सका, इसका मुझे दुःख है। आप नाराज तो नहीं हो गये ? इन तीन महीनों का लम्बी अवधि में कोई विशेष घटना नहीं हुई। मैं बराबर पत्रों में आपके लेख का तलाश करता रही। लेकिन, मालूम पड़ता है, शायद आप भूल गये। देखिए, यह ठीक नहीं। अब भी समय है। लेख का पूर्ति कर डालिए और कहीं जरूर प्रकाशित करा दीजिये। मैं अनुग्रहीत हूँगा। हाँ, एक खुश-खबरी सुना दूँ। आप प्रसन्न ही होंगे। एक सप्ताह हुआ कि मेरी शादी हो गई। मुझे खेद है कि आपका तरह वे लेखक नहीं। न प्रतिभाशाली हो। इस साल आई० सी० एस० की परीक्षा पास की है। सोचा, कभी बन्धन में पड़ना ही है। फिर, जंगल की चिड़ियाँ क्यों रहँ ? पिजड़े में फँस गई। वन में डर था, किसी व्याधा के तीर का निशाना

न बन जाती । सो, अपनी खुशी से पिंजड़े में घर बना लिया । आशा है, आप कुशल पूर्वक हैं । अब आप उनसे पूछ कर, जब चाहें मिल सकते हैं । विवाह के समय, मण्डप पर हम दोनों का जो सम्मिलित फोटो लिया गया था, उसे भी भेज रहा हूँ ।

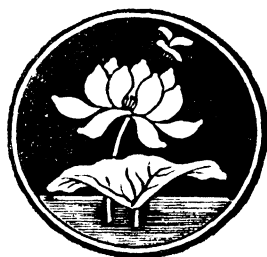
भवदीया — अनुराधा देवी ।

श्रीमती अनुराधा देवी.

आपके विवाह का समाचार जान कर विशेष प्रसन्नता हुई । ईश्वर आप दोनों को चिरायु करे । हाँ इस बांच मेरा भी विवाह हो गया है । बातचीत पक्की हुई थी पर साल ही, लेकिन शादी हुए एक महीने से अधिक नहीं हुआ । इलाहाबाद में ज्यादा गर्मी है, इसलिये मसूरी चला आया हूँ, सुहाग रात मनाने । मेरी जीवन-संगिनी बिल्कुल फूहड़ है, गाँव की एक अल्हड़ लड़की । फिर भी मैं उन्हें बेहद चाहता हूँ । आपके सम्बन्ध में लेख लिखने का मेरा कतई विचार नहीं था । और, न मैंने कभी इसके लिये चेष्टा ही की । हाँ, एक उपकार मैं आपका आजन्म नहीं भूल सकता । मैं चाहता था, विवाह के पहले प्रेम का जरा अनुभव हो जाय । जहाँ तक मेरा खयाल है, शादी के बाद रोमांस बिल्कुल खत्म हो जाता है । पिंजड़े की मैना से कौन छेड़-खानियाँ करे ? इसलिये किसी कुमारी से ही मैंने एक अनुभव ले लेना चाहा । किसी लेखक की वेदना को कोई कवियित्रा या लेखिका ही समझती है ! इस दृष्टि-कोण से मेरा चुनाव बुरा नहीं था । आपने जो सहयोग दिया उसके लिये मैं आभारी हूँ । लेख न तो लिखने का विचार था और न अब लिखूँगा हा । हाँ, हम दोनों में जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसी को अविकल रूप में मैंने 'तिरहुत समाचार' के सम्पादक के पास भेज दिया है । मेरा विश्वास है कि इससे आपका अहित नहीं होगा । मैं समझता हूँ आपके पति काफी समझदार होंगे । और न भी हों, तो पिंजड़े की मैना को डर क्या ? जंगल की चिड़ियाँ ऐसा कहे, तो एक बात । आपका नया फोटो भी छपेगा । लेकिन उसमें आपके

पति देवता के स्थान पर मेरी तस्वीर होगी । कलकत्ते के एक निपुण आर्टिस्ट को यह काम सौंपा गया है । उक्त पत्र-माळा के लिये पारिश्रमिक रूप में मुझे एक सौ रुपया पेशगी मिल गया है, जिससे हम दोनों पति-पत्नी यहाँ सुहाग-रात मना रहे हैं । मेरी श्रीमती जो इसके लिये आपको धन्यवाद दे रहा है । अच्छा, नमस्ते ।

आपका—प्रेमकुमार ।



मरम्मत

जीजाजी को मैंने देखा नहीं था। जब उनकी शादी हुई थी तब मैं बहुत छोटी थी। और, तब से एकबार भी जीजाजी अपनी ससुराल नहीं आये। और, विवाह के बाद, इन कई वर्षों में जीजी अनेक बार मायके आईं। लेकिन, यों आने की बात तो दूर रहे, जीजाजी कभी मेरी जीजी को बुलाने तक नहीं आये। किसी को भेज देते और मेरी भोजी-भाजी जीजी उनके नज्दाक पहुँचा दी जाती।

और मजा तो यह कि होली-ऐसा त्योहार और प्रायः हर साल जीजी मायके रहे ! हमजोग समझते, जीजाजी कितने मनहूस आदमी हैं। कितनी दफे बुलाहट गई, लेकिन दुराचारी के सामने सती के 'बा' के समान वे टस-से-मस नहीं हुए। और तब जीजी के साथ ही मेरे परिवार के सदस्यों ने भी मान लिया कि जीजाजी में जो रसिकता का सोता बह रहा था वह अचानक बन्द हो गया।

किन्तु मैं यह बात मानने को तैयार नहीं थी। आखिर जीजाजी की उम्र ही क्या होगी ? पच्चीस या छब्बीस साल। गंगा किसी दिन

सूख सकती किन्तु २५ या २६ साल का नौजवान इतना अरसिक हो ... बिल्कुल असम्भव :

सो, उस दिन इसी को लेकर जीजा से बहस हो गई। उसने कहा, वे नहीं आयेगे। मैंने कहा, मैं जाकर लाऊँगी। वह बोली, अगर हार गई, तो ? मैं बोली, अगर जीत गई तो ? उसने कहा, तो जीजा जी तुम्हारे। मैंने खिलखिलाकर कहा, उहूँ ... मैं दूसरे की चीज नहीं लेता। वह बोली, तो जो वस्तु तुम्हें पसन्द हो, ले लेना। मैं बोली, रहा न शर्त ? उसने कहा, हाँ।

और, कालेज छोड़ने के एक दिन पहले ही जीजा का खत मिला चुका था, अपनी शर्त याद है न। मैं प्रतीक्षा करूँगी। मैंने भी उसी दिन एक कार्ड पर जवाब लिखकर भेज दिया था, जीजा ! तुम निश्चित रहो। मैं उन्हें लेकर ही आऊँगी। इस साल की होली खाकी नहीं जायगी।

होली की छुट्टियों में जब कालेज बन्द हुआ, तब मैं पटने से घर आने वाली थी। और सच बात तो यह थी कि जाजाजी को लाना था। फिर, होली के दिन, हँसी-खुशी के, चहल-पहल के, राग-रंग के, अकेले उतना मजा नहीं आता। बस, लगे हाथ मैंने शीला और सुहासिनी को भी अपने घर चलने का निमंत्रण दे दिया। कहीं तो होली खेलनी ही थी, और जब मैंने अपनी शर्त की बात सुनाई, तो वे भी तैयार हो गईं।

और, होली से चार दिन पहले हम तीनों पटने से रवाना हुईं—सुहासिनी, शीला और मैं। सुहासिनी हम में सबसे बड़ी थी, लेकिन उतना ही धष्ट। घबराने की बात तो दूर रहे, पुरुषों को देखते ही उनसे जूझने के लिये तैयार हो जाती। और, तर्कों से जब-तक उन्हें पराजित नहीं करता, तब-तक विश्राम नहीं लेता। पुरुषों से बहस करने, लड़ने झगड़ने और उन्हें हराने में उसे एक खास तरह का लुत्फ मिलता था, जिसके लिए वह हर वक्त उत्कण्ठित रहा करती थी।

तिरहुत-एक्सप्रेस से हम तीनों सखियाँ घर आ रहीं थीं। रास्ते में ही जीजाजी के गाँव का स्टेशन पड़ता था। हमारा खयाल था कि वहीं उतर कर तीनों जीजाजी के घर पर जायँ और वहाँ से जैये हो उनको साथ लेकर दल-बल-समेत मधुबनी पहुँचे। फिर तो जीजाजी को मुँह-मांगी चीज देनी ही पड़ेगी।

स्टीमर पर तो खैर, किसी तरह गंगा की शोभा देखते, वक्त कट गया। लेकिन, ट्रेन पर सवार होने पर सुहासिनी का जी ऊबने लगा बिना शरारत की, किसीको छुकाये, उसकी तबियत ही नहीं लगती। और जिस डिब्बे में हम बैठें उसमें कोई फ़ाँकने तक नहीं आया तब ताश खेलने की ठहरी और हम तानों बैठक जमाकर ताश खेलने लगीं।

सोनपुर और मुजफ्फरपुर के बीच में वह स्टेशन पड़ता था जहाँ उतर कर हमें जीजाजी के घर जाना था। लेकिन हम ताश को क्यों दोष दें? कम्बख्त ट्रेन एक्सप्रेस थी और वह छोटा—सा स्टेशन था इसका हमने खयाल ही नहीं किया था। और जब गाड़ी सोनपुर से चलकर एकाएक मुजफ्फरपुर स्टेशन पर खड़ी हुई, तब ताश के पत्तों को फेंक कर मैं चिल्लाई—“अरी, पगली! अरी, पगली! सुन, सुन, सुन...”

सुहासिनी जीत रही थी। वह खेल छोड़ना नहीं चाहती थी। लेकिन, शाला ने कहा—“क्या, क्या, क्या,?”

“जीजाजी तो छुट गये!” मैं बोली।

माजरा क्या था, अब उनकी समझ में आया। लेकिन, उपाय? उपाय कुछ नहीं था, सिवा इसके कि चुपचाप घर चलीं चलेँ। मगर, जीजी क्या कहेंगी? मेरी शर्त? अफसोस तो हृद से ज्यादा दुआ, लेकिन लाचार थी। उधर से सुबह के पहले कोई पेंसजर नहीं आती थी, और रात भर बी० एन० डब्ल्यू के प्लेटफार्म पर मच्छरों से लड़ना हमें मंजूर नहीं था।

सबकी राय हुई, इस दफे छोड़ दिया जाय और जीजी से हार मान ली जाय।

सुहासिनी ने वादा किया कि वह मेरी ओर से जीजा से माँफी माँग लेगा। फिर भी मुझे संतोष नहीं हुआ। मैं शर्मिन्दा थी। आखिर, मैं क्या जवाब दूंगी ?

गार्ड से पूछने पर पता चला कि पूरब से एक माज-गाड़ी चक्क चुकी है जिसकी वजह से एक्सप्रेस होते हुए भी हमारी ट्रेन को लगभग एक घंटा यहाँ रुकना पड़ेगा। हम लोगों ने विचार किया कि जो कुछ खाना-पीना हो यहीं खत्म कर लें; क्योंकि, नौ तो बज ही रहे थे और समस्तीपुर पहुँचते-पहुँचते ग्यारह साढ़े-ग्यारह बज जायेंगे।

सामान की देख-भाल करने के लिये शीला को छोड़ कर मैं और सुहासिनी रिफ्रेशमेंट रूम में पहुँची। देखा, एक सूट-बूट धारी सज्जन पहले-से हाँ वहाँ बैठे गरम-गरम पराठा पर हाथ साफ कर रहे हैं। चेहरा उनका खूबसूरत जरूर था, आँखों में चमक जरूर थी और गालों में जवानों की लाली भी जरूर हो थी, मगर, हमें इससे क्या ?

दरवाजा खोलकर खट-खट करती हुई, हम उनके सामने हाँ कुर्सी खींचकर बैठ गई। उन्होंने चौंक कर एकबार मुझे देखा और फिर सुहासिनी को। शरारत से भरी तो थी हाँ सुहासिनी, उन्हें देखकर न जानें, क्या सोचकर मुस्करा पड़ी और उत्तर में वह सज्जन भी मुस्कराये। बस फिर क्या था ? सुहासिनी को मानो मुहमांगी मुराद मिल गई। उसने प्रश्न सूचक दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैंने भी आँखों के इशारे से उसे समझा दिया कि यदि कोई दुर्घटना न हो, तो हर्ज हाँ क्या है ?

बोय आगे आकर खड़ा हो गया।

मैंने कहा—दो टोस्ट दो, आमलेट, थोड़ा शोरवा और दो प्याज़ा चाय।

बोय तो चला गया इन चीजों को लाने मगर वह सज्जन बीच में हाँ कुछ अस्पष्ट शब्दों में गुनगुना उठे जो साफ समझ में नहीं आया।

“क्या ?” सुहासिनी ने निर्विरोध पूछा।

“कुछ नहीं !” वह बोले।

“कुछ तो जरूर आपने कहा । कहिये भी तो । आखिर हम भी आदमी ही हैं । इतने नाराजी क्यों ?”

इस बार उन सज्जन का चेहरा जरूर खिल उठा । बोले—“यही मैंने कहा कि दो आदमी और इतना कम खुराक”

सुहासिनी खिलखिला उठी—“महाशय यहाँ तो आदमी की खुराक है. इससे ज्यादा तो” खैर रहने दीजिये ।

वह चुप हो गए । और हमलोगों ने खाना शुरू किया—“शिष्टाचार और अदब-कानून को भूल कर एक दूसरे की थाली में हाथ बढ़ा कर, बीच में सुहासिनी ने फिर टोका—“नाखुश तो नहीं हो गए ?”

“अजी आप भी कैसी बातें करता हैं ।” उनका खाना खत्म हो चुका था और रुमाज से हाथ-मुंह पोछकर वे मैनेजर के कमरे की ओर बढ़े । बिज पेश किया गया, तो बोले—“और, उनका भी इसी में जोड़ लीजिये ”

“किनका ? मैनेजर ने पूछा ।”

“उन दोनों लड़कियों का ” ।” हिचकिचाते हुए पूछा—“क्या मैं पूछ सकता हूँ कि रिश्ते में वे आपकी कौन ...?”

“कोई हों, इससे आपका मतलब ?” वे बिगड़ कर बोले आप अपना रुपया लीजिये । मान लीजिये, ...और उन्होंने दस रुपये का नोट उनके सामने मेज पर फेंक दिया ।

मैनेजर की मुस्कराहट रुक नहीं सकी—“नाराज क्यों होते हैं, जनाब ? मान लिया वे आपकी बहनें हैं । ” “यह, लीजिये ” इतने वापस करता हूँ ।

रुपये पैसे जा मिले, उन्हें बिना गिने ही जेब में डाल कर बढ़-बढ़ाते हुए वे निकले और सीधे दरवाजा खोलकर बाहर प्लेटफार्म को ओर बढ़े । सुहासिनी ने कहा भी—चले क्या ? ...तो, बोले जरा रुखाईसे —“हाँ”

हमें मालूम नहीं था कि हमारे जिम्मे के रुपये भी होटल के

मैनेजर को मिल चुके हैं। इसलिये खा-पीकर जब हम रुपये देने के लिये उसके कमरे में पहुँचा, तब रसिक मैनेजर मुस्कराकर बोला—“रुपये आपके भाई साहब चुकती कर गये हैं।”

हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा—“आखिर मैनेजर बेवकूफ नहीं। वह क्या समझता होगा? और हम भी क्या बाजतों! चुपचाप बाहर निकल आई।

“इन्हें लेना चाहिये...” मैंने कहा।

“जरूर जरूर... मगर वह चला कहाँ गया?”

“लेकिन बेचारा है बड़ा साधा...”

“उसी में मजा है... शैतान जो होगा, वह हमारे पंजों में थोड़े ही आवेगा।”

हम दोनों यह बातें करता हुई जा रही थीं कि पाँछे से किसी ने पुकारा—“सुनिए तो।”

“जो, जिनकी तलाश कर रहे थे, वे स्वयं आ गए!” मैंने सुहासिनी के कंधे पर हाथ डालते हुए कहा।

सुहासिनी जग-सा बल खा कर हँस पड़ी—“हाँ!”

वह बोले—“मेरी तलाश कर रही थीं?”

मैंने कहा—“हाँ।”

“मेरा इतना सौभाग्य...”

बात काट कर सुहासिनी बोली—“सौभाग्य-वैभाग्य की कोई बात नहीं। यह तो हमारा फर्ज ठहरा। भला, जो हमारे लिए होटल का बिल चुकाये, उसके प्रति हम इतनी भी कृतज्ञता न प्रकाश करें?”

“आप ता मजाक करनी हैं!”

“जी, नहीं!” मैंने चुस्त जवाब दिया—“यही तो आपकी गलती है। दर-असल मेरी सखा आप से प्रेम करती है। प्रथम दृष्टि में प्रेम इसी को कहते हैं। आपको देखा तभी से... आप से क्या छिपाऊँ? जब आप रेस्ट्रां से बाहर निकले, तब से यह बेचैन है। हम-दोनों ने आपकी

कितनी तलाश की। ...”

“और मैं तो वहीं होटल के बाहर अंधेरे में खड़ा था आप ही लोगों की इन्तजारी में...”

“लो, बहन !” मैंने सुहासिनी को चिकोटी काटते हुए कहा—
“इधर भी तुमसे कम प्रेम नहीं है !... अब निराश मत हो !”

सुहासिनी असीम लज्जा का अभिनय करता हुई बोली—“मुझे यह अच्छा नहीं लगता ! ...” और उन सज्जन को लक्ष्य कर कहा—
“चलिए महाशय ! - कम्पार्टमेंट में बैठें... आपको जाना कहाँ है ?”

“मैं तो समस्तापुर जा रहा हूँ।”

“ओह... तब क्या है ? हम भी उधर ही जा रही हैं... साथ ही चलेंगे। आपको कोई एतराज तो नहीं है।”

“नहीं... मगर...”

“सामान कहाँ है ?”

“इंटर-क्लास के डिब्बे में... पीछे।”

“तो वह देखिए... आगे, इंजिन का तरफ सेकेण्ड-क्लास का एक इब्बा खाली है। आप उसी में आइए। हम भी वहीं पहुँचती हैं !”

वह महाशय सामान जाने चले गए।

और सुहासिनी ने मेरे कान में फुस-फुसा कर कहा—“शिकार तो बाकई बड़ा अच्छा !”

मैंने कहा—“ले न चलो घर...”

“सच ?”

“हाँ, रे... होली का एक रंग यह भी सही !”

तय हो गया कि इसे किसी तरह जरूर घर ले जाया जाय ! हमारे आने पर शीला खाने गयी और जब वह वापिस खोटी तब गाड़ी खुलने का वक्त हो गया था। हमने जल्दी-जल्दी कुर्ची के सिर पर सामान फेंक कर उस सेकेण्ड-क्लास के डिब्बे का रास्ता लिया, जिसमें उपर्युक्त महोदय हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। हमलोगों के पहुँचते ही

बड़े भदब से वे उठ खड़े हुए और हमारा स्वागत करते हुए बोले—
“आइये—बहुत देर हुई ...”

“हाँ हम में से एक खाने गया थीं। आपको शायद बहुत तक-
लीफ हुई” मैंने कहा।

“ना .. ना .. कोई बात नहीं ! ... आप बैठिये भी तो सही !”
और कुली के सिर से सामान उतार एक-एक कर उसे सजाने लगे।

गाड़ी सीटों देकर खुल गयी। कुली पैसे माँगने लगा। सुहा-
सिनी ने पूछा “कितने चाहिये ?”

कुला बोला दौड़ते-दौड़ते — “चार आने !”

“ऐ !” सुहासिनी ने कहा—“चार आने बहुत हैं दो आने
तुम्हें मिलेंगे।” और पास से दुबली निकाल कर कुली को देने लगी।

तब-तक उन महाशय ने जेब से पूरा एक रुपया निकाल कर
कहा — “क्या कोजिएगा, गरीब आदमी है ... और, रुपया कुली की ओर
बढ़ाया—“जो, बारह आने वापिस करो।”

कुली ने रुपया तो ले लिया, मगर, उसके पास पैसे नहीं थे, जो
वापिस करे। ट्रेन स्टेशन छोड़ कर बाहर निकलता जा रही थी और
वह उसके बराबर दौड़ रहा था—“बाबू, पैसे दीजिये ...”

सुहासिनी ने कहा—“जाने दीजिये, गरीब आदमी है ! बाबू-
बाबू मिल कर खायेंगे और आपकी दुआ मनायेंगे।”

बारह आने पैसे ... बेचारा अजनबा जी मसोस कर रह गया।
लेकिन, ऊपर से बोला—हाँ, हाँ, ... कोई, हर्ज नहीं ! मैं तो यों ही
कह रहा था।”

सुहासिनी मेरी तरफ देखकर, कनखियों से मुसका पड़ी। मैंने
भी, मानो, कह दिया — “धन्यवाद !”

अब जनाब जरा इतमीनान से बैठे, तो शीला ने ताश की गद्दी
बढ़ी बे-तकल्लुफी से फेंक कर कहा—“मैं समझती हूँ, हमारे मेहमान
साइब खेलना जानते होंगे ...”

मैंने शीला की हॉ में हॉ मिला कर कहा—“जरूर-जरूर... इन्हें खेल में शामिल होना ही चाहिये।”

लेकिन, सुहासिनी बीच में ही बोल उठी—‘ नहीं, बहन ! खेल-खेल में ऐसे नाजुक वक्त को बिता देना ठीक नहीं... आओ, हमलोग गप-शप करें ’

और अन्त में सुहासिनी का प्रस्ताव ही पास हुआ। बातों का सिलसिला चला !

मैंने पूछा - “आपको मैं किस नाम से पुकार सकती ?”

“मुझे जोग नगेन्द्र नारायण के नाम से जानते हैं... यों, आप जो कहें - ”

मैं सुहासिनी से कुछ कहने ही जा रही थी कि शीला बोल उठी—“अच्छा, नगेन्द्र बाबू ! आपकी शर्दी तो नहीं हुई है ?”

नगेन्द्र बाबू जरा सोंच कर बोले - “नहीं, अभी तक तो नहीं हुई है - ”

‘ इसके मानी ?’

“इसके यह मानी” मैंने कहा “कि अब करने का इरादा रखते हैं। तुम इतना भा नहीं समझती, शीला !”

नगेन्द्र बाबू संभल कर बैठ गये। सम्पूर्ण डिब्बे में तान लड़कियाँ... और, सिर्फ एक पुरुष ! लड़कियाँ भी ऐसी कि... हँसमुख, सुन्दर, सुभाषिणी आधुनिक... नगेन्द्र बाबू जैसे आसमान पर उड़े जा रहे थे। उन्हें यह सब स्वप्न मालूम पड़ता था। सुन तो अवश्य रखा था कि कालेज की छोकड़ियाँ गजब की दिलेर होती हैं मगर, उन्हीं से, इतने नजदीक से सुनसान रात में, चलती ट्रेन के डिब्बे में सुकाबजा हो जायगा यह उन्होंने सोचा ही कब था ?

सुहासिनी बारम्बार उनकी ओर इस तरह जानच भरी निगाह से देखती, मानो वह उन्हें बेहद प्यार कर रहा हो और नगेन्द्र बाबू भी सुहासिनी की इस दृष्टि को देखते, तो सोचते, मैं कितना भाग्यवान हूँ।

सुन्दरी सुहासिनी किसी को चाहे और वह स्थिर रह जाय, यह असम्भव बात थी। नगेन्द्र बाबू विचलित होने लगे। रह-रह कर उन्हें गुदगुदी-सी होती और भाविष्य के उज्ज्वल प्रकाश में एक अवर्णनीय सुख की कल्पना करके आत्मविभोर से हो जाता। नगेन्द्र बाबू को सहसा विश्वास नहीं होता कि ऐसा बात भी हो सकती है ? लेकिन सुहासिनी के हावभाव देखकर एकाएक अविश्वास करने का जी भी नहीं चाहता।

वह इसी उधेड़-बुन में पड़े थे कि सुहासिनी ने उनका तरफ करण दृष्टि से देखकर एक दीर्घश्वास लिया और फिर शर्म से आप ही सिर नीचा हो गया।

नगेन्द्र बाबू अपने किताबी ज्ञान पर कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगे। निस्सन्देह, यह प्रेम का लक्षण है। उन्होंने पढ़ा है। दीर्घश्वास, लज्जा, उत्कण्ठा, जालसा इनका अर्थ क्या है ?

वह पुलकित हो गये। उनका सारा शरीर रोमांचित हो गया। वह लगातार एकाएक सुहासिनी को देख रहे थे। सुहासिनी सिर नीचा कर पैर के अँगूठे से कम्पार्टमेन्ट का जर्मान पर नाना प्रकार के चित्र बना रही थी। मैं और शीला उसकी यह अभिनय-कुशलता देखकर कभी विमय से चकित होतीं और कभी कौतुक से मुस्करा देतीं !

मगर, नगेन्द्र बाबू के सामने एक ही चित्र था, और वह था सुहासिनी का मुख-मण्डल। वह बड़े गौर से उसके चेहरे के पल-पल बदलते हुए चढ़ाव-उतार को देख रहे थे।

अकस्मात्, आँखें चार हुंईं। सुहासिनी ने मुस्करा कर दृष्टि फेर ली और नगेन्द्र बाबू की पलकें झिलमिलाने लगीं।

शीला ने कहा— “बहन, यदि हमलोगों की उपस्थिति से प्रेम-प्रसंग में बाधा पहुँचती है, तो कहो, हम उठकर चली जायँ।”

मैं बोली— “अजी वाह ! जाओगी कहाँ ? हाँ सुहासिनी देवी चाहें, तो हम सो सकती हैं। नौद भी लग रही है ... क्यों शीला

बहन ! ठीक है न ?'

सुहासिनी मचलकर बोली—“जाओ, .. तुम्हारा यह व्यवहार मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं ।”

“पसन्द क्यों आये ?.. अभी तो मैं तुम्हारे रास्ते में काँटा ही हो रही हूँ ।... भई वाह, प्रेम भी क्या ही बला है । दूरेन, पार्क, सड़क, जंगल, कहीं भा दबोचकर यह अपना प्रभाव दिखला सकता है ।” शीला बोली ।

“हाँ, जा !” मैंने कहा — और, हमें ही यह कब मालूम था कि सुहासिनी इस तरह प्रेम-पाश में फँस जायगा । भगवान इस रोग से बचाये... .. देखो न, चन्द घंटों में ही कैसा परिवर्तन हो गया है ।”

सुहासिनी चिल्लाकर बोली—“चुप रहोगी कि नहीं ?”

“नहीं, नहीं नहीं... .. हम दोनों ने एक साथ ही कहा ।

“मैं जंजार पकड़ कर खींचती हूँ . ठहरो ।” और, वह सचमुच जंजार पर हाथ रखकर खींचने को तैयार हो गई ।

शीला ने पुकार कर कहा—‘नगेन्द्र बाबू, देखिये तो सही ! सुहासिनी को रोकिये, नहीं तो हम सभी संकट में पड़ जायेंगे ।’

नगेन्द्र बाबू ने देखा. सच तो सुहासिनी जंजार पकड़ कर खींचना ही चाहती है । अगर, वह न रोकें गई, तो मालूम नहीं, हमलोगों के सिर क्या बीते ?

उन्होंने लपककर सुहासिनी का हाथ पकड़ लिया और उसे जबरदस्ती अपनी जगह पर बैठ जाने के लिये लाचार किया ।

सुहासिनी का हाथ पकड़ना था कि क्रुद्ध सर्पिणी के समान वह फुफकार कर उठा । क्रोध से सारा शरीर काँपने लगा । तमाम चेहरा सुर्ख हो गया । डपटकर उसने कहा—“नगेन्द्र बाबू !”

नगेन्द्र बाबू चौंक पड़े, जैसे नींद में किसी भयानक विस्फोट का शब्द सुना । वह डर के मारे काँपने लगे—“मुझसे बड़ी गलती हो गयी, माफ कीजिएगा ।”

“माफ !” सुहासिनी ने गरजकर कहा. माफ ? ... ठहरिये । मैं आपको जेल भेजवाती हूँ । समस्तीपुर में आपको पुलिस के सुपुर्द करती हूँ । आपने समझ क्या रक्खा है ? दो चार महीने जेल की खिचड़ी खाइयेगा, तब समझ में आयगा कि किसी भले घर का लड़की का बदन छूना कैसा गुनाह है !”

“नहीं, नहीं ऐसा मत कीजिये । मेरी भी इज्जत है । और, समस्तीपुर में तो मेरे कितने रिश्तेदार हैं । मुझे कलंकित मत कीजिये ।”

“आपके जैसे लोगों को कलंकित करना भी कलक का अपमान करना है ! शेर के भेष में यह गाँदड़ की खाल । उफ, मैं क्या जानती थी कि शराफ गुंडे ऐसे होते ।”

मेरी और शाला का हँसी तो रोके नहीं रुकती थी । पेट में बल पड़े जात थे मगर, मुँह में जबरन रुमाज ठँस-ठँसकर हँसी को पचाने की कोशिश कर रही थी ।

और, उधर नगेन्द्र बाबू का बुरा हाल था । चेहरेपर इवाइयॉ उड़ रही थी । आँखों में आँसू छलछला आये थे । मुँह पाला पड़ गया था और उनका चेहरा सूखकर ऐसा हो गया था, जैसे वह जनमभर के रोगी हों । और, सुहासिनी के क्रोध का पारा उतरता हा नहीं था ।

अब नगेन्द्र बाबू को मालूम पड़ा वह, किस दुविधा में थे । झूठ, ...जाल..... फरेब,... ...क्या वहाँ सुहासिनी का प्रेम था, जोलुप इष्टि थी, सरस मुस्कान थी होटल से लेकर अंजार खीचने तक का सारा दृश्य क्षणमात्र में उनकी आँखों के आगे से गुजर गया । नारी, ...मायाविनी,.....स्त्री-चरित्र धोखा ।

किन्तु, अब उपाय ही क्या था ? सुहासिनी यदि सचमुच ही पुलिस को सूचित कर दे, तो वह कर ही क्या सकते हैं ? क्या ये दोनों उसका पक्ष लेंगे ? नहीं, तो.....उनके दिमाग में जेल की तस्वीर घूमने लगी । लांछना, अपमान, घृणा, जेब, हथकड़ियाँ.... ...

लोग उन्हें क्या कहेंगे ?

वह दौड़कर सुहासिनी के पैरोंपर गिर पड़े—“मुझसे भूल हुई, सुहासिनी देवी !... सुझे क्षमा कीजिये ।”

नगेन्द्र बाबू सुहासिनी के पैरों के पास झुके हुए थे और सुहासिनी उनकी आँखें बचाकर हँस रही थी ।

शाला ने इशारे से कहा—“अब क्या हो ?”

सुहासिनी बोली—“ठहरो, तो ! .. तुम तमाशा देखो !”

सुझे दिया आ गई । यह क्या ? भला इतना भी बेवकूफ बनाया जाता है । मैंने कहा—“सुहासिनी, जाओ; हटाओ इस बात को । जब नगेन्द्र बाबू गलती महसूस करते हैं तब माफ कर दो ।”

सुहासिनी बोली—“अभी नहीं । मैं माफ करूँगी तब, जब ये सौ मर्तबा मेरे सामने कान पकड़कर उठे-बैठे ।”

शाला ने कहा, ‘हर्ज ही क्या है, नगेन्द्र बाबू’ अभी इस दिब्बे में हमारे सिवा कोई दूसरा आदमा देखता थोड़े ही है । समझिये, कसरत ही कर रहे हैं, नहीं तो मामला जरूर संगीन हो जायगा । सुहासिनी बड़ी शैतान है .. भूखी बाघिन ही समझिये ।’

नगेन्द्र बाबू ने कातर दृष्टि से मेरी तरफ देखा शायद करुणा की भिक्षा से । मैं सजा को बिल्कुल मुलतवी तो नहीं कर सकी । हाँ, सौ से पचास पर ले आई ।

और नगेन्द्र बाबू को मजबूर होकर गुरुजी की पाठशाला का यह पुराना फर्ज अदा करना ही पड़ा ।

हमलोगों की हँसी रह-रहकर उमड़ी पड़ती थी—बेचारे एक, दो, तीन, गिन-गिनकर उठ बैठ रहे थे ।

शाला बोली—जरा ठाक से बैठिये नगेन्द्र बाबू ! आप, तो बिल्कुल बच्चों की तरह ..”

मैंने डाँटा शाला को—“यह क्या बात है ! ..”

और कवायद ज्यों ही पूरी हुई त्यों ही नगेन्द्र बाबू एक किनारे

बैठकर खिड़की से मुँह निकालकर आसमान की तरफ देखने लगे। फिर, उनकी हिम्मत नहीं हुई जो हमारी तरफ नजर घुमायें।

एक ओर शीला लेट रही और मैं उसको बगल में बैठी थी। दूसरी ओर बर्थपर पूरा बदन फैलाकर सुहासिनी लम्बी हो गई। रास्ते भर बिल्कुल सुनापन रहा।

गाड़ी जब समस्तीपुर जंक्शनपर पहुँची तब नगेन्द्र बाबू अपना बिस्तर सँभालने लगे। शायद मेरे प्रति नगेन्द्र बाबू के अब भी खयाल-जात अच्छे थे। ज्योंही वह उतरने की कोशिश करने लगे, त्योंही मैंने पूछा—“यह क्या नगेन्द्र बाबू आप जा रहे हैं?”

“हाँ, मैं जा रहा हूँ।” गला उनका भर आया।

हमजोगोंके साथ नहीं चलेंगे क्या?”

“मैं इस लायक नहीं हूँ कि आप लोगों के साथ.....”

“तो क्या आप चले ही जायेंगे?”

“हाँ।”

मैंने सुहासिनी को उठाया—“ओ, री सुहासिनी... .. उठ, उठ तो देख... .. नगेन्द्र बाबू जा रहे हैं... .. मानते ही नहीं...”

सुहासिनी घबराकर उठी और उसके बाद ही शीला था।

तबतक नगेन्द्र बाबू प्लेट-फार्मपर आ गये थे और ‘नमस्ते’ कह रहे थे।

मैंने कहा, “नगेन्द्र बाबू ! और सुहासिनी.....”

नगेन्द्र बाबू मुझे माफ़ कीजिये।

इनने मैं शीला चिल्लाई—अरी, ओ बहन ! देख तो सुहासिनी को क्या हो गया ! अभी तो चंगा थी

मैंने मन-ही-मन फिर दुरभिसंधि की सूचना का अनुभव किया। घूम कर देखा, तो सुहासिनी बर्थ पर लेटी थी और शीला उसके मुँह पर आँचल से दबा कर रही थी।

मैंने कहा, “नगेन्द्र बाबू ! ” इधर आइये। सुहासिनी को न जाने

क्या ... ”

नगेन्द्र बाबू अवाक् ! “चुपचाप मेरे पाँछे आये ।

सुहासिनी मूर्छित अवस्था में पड़ी थी और बेहोशा में ही कुछ बक रही थी । नगेन्द्र बाबू घबराए—से मालूम पड़े । मुझे भी कौतुहल हुआ । मैंने शीला को भेजा, कम से एक ग्लास पाना तो ले आओ । शीला तुरन्त पानी लाने चली गयी । और सुहासिनी इधर मूर्च्छा के आवेग में बोल रही थी—“नगेन्द्र बाबू, ... आप मत जाइये, ... मैं आपके बिना ... ”

नगेन्द्र बाबू बिल्कुल जड़-से-खड़े, आश्चर्य विस्फारित-नेत्रों से अपलक सुहासिनी को देख रहे थे ।

“सुहासिनी मर जायगी । आप मत जाइये, नगेन्द्र बाबू !” मैंने कहा ।

शीला पाना लेकर आ गई थी । मुँह पर जल के दो-एक छींटे लगते ही सुहासिनी ने आँखें खोल दीं ।

“मुझे क्या हो गया था, शीला ?”

“कुछ नहीं !” शीला बोली “यह देखो नगेन्द्र बाबू जोर आप हैं । चिन्ता मत करो । ये नहीं जायेंगे ।”

“हाँ, अब ये तुम्हें छोड़ कर कैसे जायेंगे ? मैं इन्हें रोक रखूँगी, तुम्हारी खातिर ।” मैंने कहा ।

सुहासिनी फूट-फूट कर रोने लगी । हम दोनों ने उसे समझाया, तो कहीं चुप हुई । नगेन्द्र बाबू चुपचाप यह तमाशा देख रहे थे । उनका अल्ट्र हैरान थी । आखिर यह नाटक है क्या ?

“सच कहता हूँ, शीला ! नगेन्द्र बाबू चले जायेंगे, तो मैं ट्रेन से कूद कर जान दे दूँगी ... ”

मैंने कहा, जान देने की क्या जरूरत ? नगेन्द्र बाबू तो तुम्हारे साथ चल रहे हैं । सब्र करो, सुहासिनी !

आखिर दिज ही तो है ... और, नगेन्द्र बाबू भी पत्थर नहीं थे ।

सुहासिनी की व्यथा ने उन्हें फिर पिघला दिया ।

“उन बातों को भूल जाइये, नगेन्द्र बाबू ! मुझ पर कभी-कभी हिस्टोरिया का दौरा आता है और आवेश में बहुत कुछ बक-झक जाती हूँ । इतमोनान न हो, तो शाला से ही पूछिये”, सुहासिनी बोली ।

और, शाला न भी वकालत की—“हाँ, नगेन्द्र बाबू ! सुहासिनी सच कहता है और, थोड़ी देर के लिये उसकी बात को गलत भी मान लें, तो प्रेम में ऐसा अवसर आता ही है ! सोने की परीक्षा कसौटी पर होती है और प्रेम का जाँच भा.....”

नगेन्द्र बाबू मुस्कराने लगे, बोले—“आपके लिये मैं प्राण भी निछावर कर सकता हूँ । चिन्ता मत करें ।”

सुहासिनी के आँसू, जो कपोल पर मोती की तरह डुलक गए थे, मुस्कान की किरणों में ओस-बिन्दु के समान चमकने लगे ।

और, ट्रेन जो समस्तापुर से खुलता एक कम्बलूट टी० टी० आई० भाँ कूद कर उस डब्बे में सवार हो गया ।

इन लोगों का हरकत न उसके दिज्ञ में शक का जगह पैदा कर दी थी, और, अन्त में उसका शक निकला भी ठीक ।

क्योंकि इन लोगों के पास इन्टर क्लास का टिकट था, लेकिन आपस में सलाह-मशविरा कर इन लोगों ने उसे दिखाना मंजूर नहीं किया । नगेन्द्र बाबू अब किस मुँह से अपना इंटर का टिकट दिखलाते ?

टी० टी० आई० ने कहा—“आप लोग जायँगे कहाँ ?”

शाला बोली—“मधुबनी ।”

“चार्ज देते हैं क्या ?”

“हाँ, मैं देती हूँ ..” शाला बोली ।

नगेन्द्र बाबू ने कहा—“नहीं साहब, चार्ज मैं दूँगा । ये कैसे दूँगा ..”

मैंने कहा—“नगेन्द्र बाबू आप क्यों तकलीफ करते हैं ? हमें सबका किराया देने दीजिये ।”

“ऐसा हर्गिज नहीं होगा ..भला आप”

सुहासिनी बोली — “नगेन्द्र बाबू को नाखुश मत करो, बहिन ! यदि ये देते हैं, तो इन्हें देने ही दां न !”

नगेन्द्र बाबू ने समझा था, अधिक-से-अधिक पाँच-सात रुपये से काम चल जायगा । लेकिन, पटने से मधुबनी तक का किराया जो रसीद में चढ़ाकर टी० टी० आई० ने दिया, तो उनके हाश उड़ गये । पूरे उनतीस रुपये बारह आने ।

अब तो नगेन्द्र बाबू का मिजाज पत्ते का तरह ढिलने ढुलने लगा । बात यह थी कि उनके पास कुल मिलाकर सत्ताइस रुपये से ज्यादा नहीं था । और, अपना सब कुछ एक-एक पैसा तक दे देने पर भी कुछ घट ही रहा था ।

लेकिन, अब चारा ही दूसरा क्या था ? भगवान के भरोसे, एक-एक कौड़ी टी० टी० आई० को सौंप कर वह मेरा मुंह देखने लगे । टी० टी० आई० ने रसीद बढ़ाते हुए कहा — “और ?”

मैंने कहा — “और, मैं देता हूँ ”

खैर, किसी तरह टी० टी० आई० से छुटकारा मिला, तो नगेन्द्र बाबू ने सन्तोष की साँस ली ।

एक बजे के लगभग, रात में दूने दरभंगा पहुँचा । हमें यहाँ सुबह तक ठहरना था । क्योंकि दिन के आठ बजे करीब, मधुबनी की गाड़ी वहाँ से छूटती है ।

ढिबरे से उतर कर सीधे हम वेस्टिंग रूम में चुसे और ठाठ से विस्तर जमाया । नगेन्द्र बाबू टेबुल पर सोए और हम तीनों बहनें, नीचे फर्श पर शाला ओर सुहासिना झटपट सो गईं, लेकिन मेरा आँखों में नींद कहाँ ?

निद्रा के लिये प्रयत्न करते-करते जब थक गयी, तब जग हवा खाने की इच्छा हुई । फागुन का महीना था, ठंडी-ठंडी बयार बह रही थी और बाहर चमेली के फूल की तरह चाँदनी खिली हुई थी !

मैंने नगेन्द्र बाबू को उठाया — “जरा इधर आइये ।”

बेचारे आँख मलते हुए उठे और चुपचाप मेरे पीछे-पीछे चले ।

वेस्टिंग रूम से बाहर निकल कर मैंने कहा—“नगेन्द्र बाबू, कैसी अच्छी चाँदनी है !”

नगेन्द्र बाबू ने दर्बा जवान से कहा, ‘हूँ’

“और, इचा कितनी मोठा ...?”

नगेन्द्र बाबू बोले, “हूँ” ।

“इस वक्त क्या आपका यह इच्छा नहीं होती कि कोई आपके साथ हो !”

नगेन्द्र बाबू दुतबाने लगे, अ...आ आ...प...का...म...म...
त ल ब ?

“सुहासिनी आपको चाहता है न ?”

“शायद”

“तो, क्यों न आप उससे शादी...”

“उसके माता-पिता ...” नगेन्द्र बाबू बात काट कर बोले ।

“खैर ... उधर से आप एकदम निश्चिन्त रहें । सुहासिनी विवाह करने के लिये स्वतन्त्र है । और, उसके माता-पिता भी अठारहवीं सदी के नहीं हैं ।”

“फिर भा”

“हाँ, फिर भा उनसे राय ले ली जाय...इसीलिये तो आपको घर ले चलना है...बात पक्की हो गई, तो झटपट ।”

“लेकिन, इस वक्त तो मेरा हालत अच्छा नहीं !”

“अरे, वह आपका घर ठहरा !.....इसमें तकरल्लुफ का क्या बात है ?”

“लेकिन, बात खुले नहीं”

“क्यों ?”

“मधुबनी में मेरे एक खास रिश्तेदार रहते हैं !”

“रहने भी दीजिये । मैं आपको इतमीनान दिलाती हूँ कि ईश्वर

भी इसका पता नहीं पा सकेगे।”

सुबह जब नगेन्द्र बाबू उठे, तो बेहद प्रसन्न थे। रह-रह कर सुहासिनी की तरफ देखकर मुस्करा उठते थे। मन का बाँछें खिली पड़ती थीं। चारों ओर हरियाली-ही-हरियाली दिखाई पड़ती थी। तकदीर हाँ, तो ऐसी ! क्या हुआ, जो डिप्टो मैजिस्ट्रेट नहीं हुए ? वे हजार बार बी० ए० में फेल होने को तैयार हैं, बशर्ते कि कोई हाथ पकड़ कर प्रेम के इम्तिहान में इस तरह पास करा दे।

“शेव-वेव कुछ होगा ?” जीला ने हँस कर पूछा।

“हाँ, हाँ” गालों पर हाथ फेरते हुए नगेन्द्र बाबू बोले, “और, जरा स्नान भी, जिससे तबीअत ढलकी हो जाय।”

“अवश्य।” मैंने भी जोर देकर कहा।

सूट-केस से सोप, स्टिक और सेफ्टी निकाल कर लगे नगेन्द्र बाबू दाढ़ी कमाने और तब-तक मेरे हुक्म से शीला ने उनके लिये स्नानागार में पानी, तौलिया, साबुन, तेल आदि का बन्दोबस्त कर दिया।

और, जैसे नगेन्द्र बाबू ने स्नानागार का दरवाजा बन्द किया, वैसे ही मैंने सारा सामान शीला की मार्फत ट्रेन में भिजवा दिया। और साथ ही उससे यह भी कह दिया कि देखो, जीजी से कहना कि मैं तो हार गयी। जीजार्ज नहीं आ सके। हाँ, उनके बदले सुहासिनी के लिये एक घर ढूँढ़ कर लिये आ रही हूँ। सगाई का सारा बन्दोबस्त पहले से ही तय रहे।

घड़ी देखी तो आठ बज रहे थे। मैंने उसे फुर्ती से बिदा किया। और घड़ी का काँटा घुमा कर ठीक सात पर रख दिया।

शीला के जाते ही नगेन्द्र बाबू चिल्लाते हुए बाहर निकले। भौंगी धोती पहने, देह से टप-टप साबुन के फेन से मिला हुआ पानी चू रहा था।

सुहासिनी तो उनकी सूरत देखते ही खिलखिला कर हँस पड़ी। मय्य, मैंने अपनी हँसी रोक कर कहा—“क्या हुआ नगेन्द्र बाबू ?”

“देखती नहीं ? सर के तमाम बाल उड़ रहे हैं !” और यों कह कर जो उन्होंने मस्तक पर हाथ फेरा, तो केशों का एक गुच्छा चिपक कर उनकी उँगलियों में आ गया ।

मैंने ऊपर से बनकर और भीतर से हँसकर कहा—“बड़ी गलती हो गई, नगेन्द्र बाबू । माफ कीजियेगा । शोला बिल्कुल अलहद है । उसे इतनी भी तमीज नहीं कि नहाने के लिये कहीं राजारानी साबुन दिया जाता है ?”

नगेन्द्र बाबू क्रोध और क्षोभ से दांत किटकिटाते हुए सिर धुन रहे थे ।

मैंने कहा—“सैर, जाने दोजिये । अब तो जो होना था सो हो गया । कृपा कर स्नान कर लीजिये ।”

नगेन्द्र बाबू कुछ और बोलते लेकिन सुहासिनी ने उन्हें बोलने का मौका ही नहीं दिया—“ओह, जाओ...डियर ! मैं शीखा की मरम्मत करूँगी । दुष्ट...शादी हुई भी नहीं कि अभी से मजाक करना शुरू कर दिया !”

माजिक को देखते ही जिस तरह गुस्से से तमतमाता हुआ कुत्ता दुम हिजाने लगता है, उसी तरह बेचारे नगेन्द्र बाबू गर्दन नीची कर चुपचाप गुसलखाने में चले गये ।

काफ़ी देर तक स्नान किया या रोते रहे और जब स्नानागार से बाहर निकले तो चेहरा कुछ खुश था । लेकिन सिर सफाचट...बदन में सिर्फ रूंगी...और, हाथ में गोली धोती, तेल, साबुन वगैरह लिये ।

बोले—“सामान कहाँ है ?”

“सामान तो ट्रेन में भिजवा दिया है । सोचा, सामान पहुँचा रहेगा, तो हम दौड़ कर भी चढ़ लेंगे । मैंने कहा ।

“मुश्किल है...मैं पहनूँगा क्या ?”

“चलिये न...ट्रेन में पहन लीजिये ।”

बापार...नगेन्द्र बाबू उसी हालत में चले । प्लेटफार्म पर जोर

का कहकहा लगा और चारों ओर से तालियाँ पीटने का आवाज आने लगीं। नगेन्द्र बाबू तो शर्म से मर गये और मुसाफिरों के लिये एक तमाशा हा गया।

मगर, यह क्या...स्टेशन खाली था। मधुबनी की गाड़ी छुट चुकी थी। लेकिन, नगेन्द्र बाबू को विश्वास नहीं हुआ। घड़ी देखी तो पौने आठ ही बजे थे। पागल की तरह दौड़े हुए टिकट-घर में गये। देखा, तो वहाँ का घड़ी में साढ़े आठ बजे थे। पूछा, तो पता चला कि सच-मुच ट्रेन खुल गई।

अब तो नगेन्द्र बाबू को काटो तो खून नहीं।

मैंने सुहासिनी को समझाया— “पगली, अब तूही जाकर मना, तो मानें “नहीं तो सारा गुड़ गोबर हो जायगा। कहीं चिल्ला कर लोगों का जमा कर दें, तो पोल ही खुल जाये!”

सुहासिनी दौड़ कर गई और नगेन्द्र बाबू का हाथ पकड़ लिया। सिहना के पंजे में जैसे हरिन मुर्दा हा जाता है, वैसे हा सुहासिनी के छूते ही नगेन्द्र बाबू बर्फ की तरह टंडे हो गये। ज्वालामुखी जो फूटने वाला था, तुषार के स्पर्श ने उसे एकदम शांत कर दिया।

नगेन्द्र बाबू को घसांट कर सुहासिनी वेटिंग रूम में ले गई और अकेले में ऐसा जादू चलाया कि फिर वे एकबार भी चूँ-चपड़ नहीं कर सके...

और, जब तक दूसरी ट्रेन नहीं आई, तबतक कमरे से बाहर निकले भी नहीं। हाँ, हमलांगों की यह गलती थी जो मेहमान को भूखे छोड़ कर होटल से रसगुले उड़ा आईं और उन्हें पूछा तक नहीं।

खैर, दूसरी गाड़ी से किसी तरह हम लोग भी मधुबनी पहुँचे। और जनाब वहाँ भा अड़ियल टट्टू का तरह पैतरे बदलने लगे। सुहासिनी ने फिर अपने प्रेम का चाबुक संभाली और दो-एक करारी चाँट पड़ते ही बिल्कुल लकड़ी की तरह सीधे हो गये।

वहाँ जूँगा पहने, साबुन-तेल का शीशा लिये, कंधे पर गोली धोती

डाके, दाढ़ी मूँछ सर के बाज सफाचट किये, भूखे-प्यासे नंगे पाँव फागुन की कड़ी धूप और पछुवा हवा में पैदल ही हमारे पीछे शहर की तरफ खाना हुए।

मैं शीला पर झुंझा रही थी—“शैतान को इतनी भी भ्रष्ट नहीं कि कम से कम स्टेशन पर भी सामान-सवारी वगैरह लेकर खड़ी रहे।”

सुहासिनी बोली—“बिल्कुल नादान है। खैर, अब तो पहुँच ही गये। वह देखिये मन्दिर की बगल में; उजला-उजला-सा मकान...”

“बड़ा कष्ट दिया, नगेन्द्र बाबू को!” मैंने कहा।

“मैं सचमुच दुःखी हूँ।” सुहासिनी बोली।

नगेन्द्र बाबू चुपचाप सुनते जा रहे थे।

बंगले पर पहुँचते ही, हमने नगेन्द्र बाबू को बाहर, बरामदे में छोड़ दिया। समझा दिया कि अब परिचितों के सामने इस वेश में चलना ठीक नहीं होगा। मैं कपड़े ले आती हूँ। बदल लीजिये, तब किसी के सामने होइये।

नगेन्द्र बाबू हमारा भाव समझ गये और बरामदे की सीढ़ियों पर, एक किनारे बैठ गये।

मैं और सुहासिनी अन्दर गईं। दालान में शीला मिक्की। जीजी भी थीं। हँसी से घर गूँज उठा।

मैंने कहा, जीजी! मैं हार गई।... लेकिन, एक नये जीजानी को फँसा कर लायी हूँ... देखोगी तो खुश हो जाओगी।

जीजी सुहासिनी के गालों पर एक मीठी चपत लगाती हुई बोली—“अच्छा, यह बात।”

सुहासिनी जीजी के गले से चिपट कर बोली—“हाँ।”

“तो, चलो मुझे भी दिखाओ... कैसे हैं तुम्हारे दुकान ?

“हाँ, हाँ, चलो देखो... मगर अभी दूर से ही देखना... दुकानजी जरा थके-मादे हैं भूखे-प्यासे हैं...”

चारो भागे बढ़ीं। जीजी ने दीवार की भोट से ही नगेन्द्र बाबू को

देखा और मारे शर्म के छिः ! छिः ! करके भागीं और हम तीनों से जान छुड़ा कर अपने सोने के कमरे में मुंह छिपा कर बैठ रहीं । फिर तो, लाख हमजोगों ने गुदगुदाया, मनाया, पैरों पड़ीं मगर वह हिली तक नहीं ।

तब तक शीला जिन्हें निमंत्रित कर आई थी, वे अड़ोस पड़ोस की लड़कियाँ कमला, बिमला, निर्मला, उर्मिला, शान्ता, आदि-आदि करीब एक दर्जन के पहुँच गईं । हम जोजी को छोड़ कर उन्हीं में मिल गईं । थोड़ा देर तक काफी हो हल्ला रहा । हमजोगों ने शोर गुल कर घर में तूफान मचा दिया ।

इतने में क्या देखा कि बाबूजी हमारे नगेन्द्र बाबू को लिये हुए अन्दर आ रहे हैं एकाएक खयाल आया, 'हंगामे के बीच में पड़कर उन्हें तो भूल ही गई थी' ।

लेकिन, बाबूजी ने नजदीक आकर मुझे बुलाया और जो कुछ कहा, वह काफी मजेदार और अत्यन्त आश्चर्यजनक था ।

“अरी तुमलोग कितनी नासमझ हो ! जिन्दगी में पहला बार मेहमान बाबू ससुराल आये, और तुमलोग खातिर क्या करोगी, आसमान सर पर उठाए हुए हो ?”

“नहीं, बाबूजी ये तो मेरे साथ आए हैं ! ”

“ओह, तुमने पहचाना नहीं । ये बड़ी देर से बाहर, बरामदे की सोदियों पर बैठे हुए थे । अरे यही न हैं नगेन्द्र नारायण ।

अचानक होश हुआ, ‘‘ओह-हो, जीजाजी का भी तो यही नाम है…… !

मैं दौड़कर जोजी के पास पहुँची, ‘‘जीजी ! ‘‘ओ जीजी ! मैं जीत गई ‘‘ उठो, मिठाई खिलाओ !

अभिनेत्री

विजन कुमार लौटा तो, रात के आठ बज चुके थे। मृदुला ने हँसकर पूछा—“कहो, क्या खबर है ?”

विजन ने बेतरतीब ढङ्ग से कोट खोला और वहीं से कोच पर फेंक दिया। कहा—“हाँ, ठीक हो गया।”

मृदुला जरा नजर्दाक आ गयी। उत्सुकतापूर्वक बोली—“अरे ! वही तो पूछती हूँ, कि आखिर क्या ठीक हुआ ?”

विजन गौर से अपनी पत्नीका मुँह देखने लगा, जैमे, कोई सौदा ठीक कर रहा हो ! मृदुला मुस्करायी। विजन ने कहा—“जरा पोज में तो खड़ी हो जाओ !”

“पागल तो नहीं हो गये हो ?”

“मैं देखना चाहता हूँ कि तुममें ऐक्ट्रेस बनने की सहूलियत है या नहीं !”

“ऐक्ट्रेस ?” मृदुला अचरज से जान हो गयी—“तुम्हारा दिमाग इस वक्त ठीक नहीं है। जरा चाय पी लो !”

“रहने दो। खाने का वक्त हो गया है !” विजन गम्भीर होकर बोला—“पहले सुन तो जो...”

“बताते तो कुछ नहीं !” मृदुलाने तिनक कर कहा—“और, सुन लो ...क्या सुनूँ ?”

“भारत फिल्म कम्पनी है न ?”

“हाँ।”

“उसके डायरेक्टर मि० बोस से मैं मिला था।”

“क्या कहा उन्होंने ?”

“बोले कि आप विवाहित हैं या अविवाहित ?”

“तुमने क्या कहा ?”

“मैंने कहा कि मैं अविवाहित हूँ !”

“क्या सच ?”—मृदुला खिलखिला पड़ी।

“मैंने यह खयाल किया कि शायद ऐक्टर होने के लिये अविवाहित होना जरूरी हो; मगर, ...”

“मगर... ?”

मि० बोस ने कहा कि आप तुरन्त तशरीफ ले जाइये। मैं बड़े घपके में पड़ा। अजीब बात है। फिर मैंने अपने को संभाला। कहा, मेरी शादी हो गयी है। मि० बोस बोले, ऐं... ? मैंने कहा, मुझसे गलती हो गयी; याद नहीं। फिर मि० बोस ने कहा—अच्छी, बात है।

“ऐसा क्यों किया ?”

“बात यह है, जैसा मि० बोस ने कहा, कि भारत फिल्म कम्पनी में एक ऐक्टर की जरूरत है। लेकिन उस ऐक्टर को अपनी बीबी के साथ रहना होगा। शर्त यह है कि दोनों का काम मिलेगा। अकेले बिल्कुल गुआयश नहीं।”

“तो तुम्हारा क्या इरादा है ?”

“अब भी पूछती हो ?”

“क्या तुम मुझसे ऐक्ट्रेस बनने का इरादा रखते हो ?”

“जरूर ।”

“लेकिन ...”

“लेकिन क्या ? ऐक्ट्रेस बनने के लिये गुण ही क्या चाहिये ? गाना तुम्हें आता ही है । स्वर भी बुरा नहीं । और, खूबसूरती जितनी है, काफी है । जो कमी रहेगी, वह मेक-अपसे पूरी कर दी जायगी । रहा, नाचना ... सो, जरा कोशिश करने से वह भी आ जायगा ! क्यों ... ?” विजन ने मृदुला के कपोल को अंगुलियों से अनुरंजित कर कहा ।

“क्या भले घर की लड़कियाँ ... ?”

“हाँ, ...हाँ; मजे में । वह जमाना गया, जब वेदियाँ ही रंगमंच को सुशोभित करती थीं । अब तो यह हाल है कि समाज की प्रतिष्ठित महिलाएँ भी ... कहो, तो मैं दस-बीस के नाम गिना दूँ, एक-दो के नहीं !”

“रहने भी दो ... मुझसे तो यह काम नहीं होने का ।”

“लेकिन, मैं तो वादा कर आया हूँ !”

“ऐसे वादे रोज होते हैं !”

“और, ... यह ढाई हजार रुपये की तनख्वाह !”

मृदुला सोचने लगी । विजन ने कहा—“सोचती क्या हो ? डायरेक्टर बोस ने कहा कि आपको रखने में कोई ऐतराज नहीं । लेकिन, अपनी पत्नी को भी फिल्म में लाना होगा । हमें एक ‘पेयर’ की जरूरत है । और, वह पेयर ऐसा हो कि नायक-नायिका का काम खुबी से निबाह सके; क्योंकि, कहानी ही हमने वह ली है, जिसके लिये भले-घर के लड़के लड़कियों का जरूरत है ।”

“तुमने पूछा भी कि मुझे कौन-सा काम करना पड़ेगा ?”

विजन ने उत्साहपूर्वक कहा—“तुम कहो न ... मैं कल ही डायरेक्टर से पूछ आ ... यह कौन मुश्किल है ?”

मृदुला ने कहा—“तबतक विचाराधीन रहने दो ।”

“अच्छा, ...” विजन ने कहा ।

(२)

दूसरे ही दिन विजन ने डायरेक्टर से मुलाकात की ।

“कहिये मि० विजन कुमार । श्रीमतीजी राजी हुई या नहीं ?”

“हाँ—हाँ । उन्हें उज्र ही क्या हो सकता है ?”

“तो, उन्हें एक दिन यहाँ स्टूडियो में ले न आइये ?”

“जैसी आपका इच्छा । कहिये, कब ले आऊँ ?”

“कल ही ले आइये ।”

“कल तो नहीं, परसों उन्हें जरूर मैं हाजिर कर दूंगा ।”

डायरेक्टर बोस ने मुसकिराकर कहा—“खैर, कोई हर्ज नहीं ।”

विजन जब लौटा, तब बहुत खुश था । रास्ते में सबको इस बात की सूचना देता आया कि अब वह ऐक्टर हो गया; इतना ही नहीं, उसकी पत्नी भी ऐक्ट्रेस हो गयी है ! एक तार में यह दो शिकार ! उसके ऐसा तकदीर का जबर्दस्त भला और कौन है ? अब वह ठाट से रहेगा, मोटर पर सैर करेगा और जिन्दगी का लुप्त उठायेगा । तमाम दुनिया में उसकी सोहरतका डंका बजेगा और सभी अखबारों में उसकी तस्वीरें प्रकाशित होंगी । लोग उसके भाग्य पर रदक करेंगे । और, बड़े-बड़े आदमी उसकी इण्टरव्यू के लिये जालायित रहेंगे !

आते ही उसने मृदुला से कहा—“देखो जी ! मैंने मि० बोस से साफ कह दिया है कि हमलोग तैयार हैं । इतने रुपये को देखो, उस शान को देखो और ”

“तुम्हारी बातें सही हैं । लेकिन, मैं अपनी कमजोरियों को देखती हूँ, तो हिम्मत नहीं होती !”

“तुम्हारे मन की दुर्बलता है ।”

“जो हो”

“तुम नायिका बनोगी ।”

“और तुम ?”

“मेरा कोई निश्चय नहीं। भई; फिल्मों में डायरेक्टर की इच्छा ही सर्वोपरि है; कह नहीं सकता।”

“कहीं ऐसा न हो कि मुझे पर-पुरुष के साथ ...”

“हिश्!” विजन खिलखिला कर हँस पड़ा—“तुम भी किस सदी की बातें कर रही हो...?”

इतने में आया विजन का दोस्त, रमण। कोट, पैण्ट, टाई—पूरा साहिबी जिवांस में। देखा, बाजार गर्म है। पूछा—“सुना है भाभी, कि तुम ...”

“हाँ, रमण !... तुम्हारी भाभी ऐक्ट्रेस हुई हैं !”

“और, भैया ?”

“भैया ऐक्टर !”—विजन ने मुस्करा कर कहा।

मृदुला भी मुस्करायी। रमण ने कहा—“वाह !... बधाई !”

“मुझे तो बड़ी शरम लगेगी !”—मृदुला ने कहा।

“भई, तुम्हीं पूछो तो, रमण ! इसमें शरम की कौन-सी बात है ?”—विजन बोला।

“ठीक तो कहती हैं, भाभी !”—रमण ने कहा।

“तुम भी लगे भाभी की ही वकालत करने !”—छूटते ही विजन बोला।

“इतने लोगों के सामने गाना, हँसना, नाचना ...” मृदुला ने कहा—“मुझे तो बड़ी शर्म लगेगी !”

“आदत है... सब ठीक हो जायगा”—विजन बोला।

“लेकिन, इन्हें अभिनय करने आता भी हो, तब न ?”

“जन्म से ही कोई अभिनेता नहीं पैदा होता, रमण !” यह एक कला है। कला सीखने से आती है। मैंने इसका भी बन्दोबस्त कर दिया है। परसों हमें डाइरेक्टर ने बुलाया है। हमारी परीक्षा तो हो ही चुकी है; वह जरा मृदुला को देखना चाहता है। परसों ही हमारी नियुक्ति हो जायगी। और, तनख्वाह के रुपये मिलते ही, एक-एक

विषय की खास ट्रेनिंग मृदुला को मिल जायेगी। तुम निश्चिन्त रहो।”

रमण ने कहा—“भैया, यह तो समझा। मगर, भाभी जो किसी दूसरे नायक के हाथ में पड़ी और उसके साथ जो अभिनय करना पड़ा ! ”

“तुम बेवकूफ हो, रमण !”

“आप इसे बर्दाश्त कर सकेंगे ?”

“यह कौन-सा कठिन काम है ?”

“अपनी आँखों के सामने आप भाभी को किसी युवक से प्यार करते, हँसते, बोलते, चूमते, ...”

“चुप रहो !” विजन ने कहा—“चुप रहो ! यह तुम्हारी शरारत है !”

(०)

मृदुला ने, सुहागरात के बाद, पहली बार ही आइने में अपने को इतनी आलोचनात्मक दृष्टि से देखा था। चेहरा तो बुरा नहीं। यौवन भी, ... और, गालों पर ठुड़ी से ऊपर यह छोटा-सा काला तिल भी, ... ! तो, कल डाइरेक्टर बोस हमारा इमतिहान लेगा। ... हमें देखेगा। ... हम सुन्दर हैं या नहीं ?

क्या देखेगा ? अभिनय ... मगर अभिनय तो हमने कभी किया ही नहीं। बचपन में ... मगर, वह तो खेल था; कोई अभिनय नहीं।

लेकिन अभ्यास से क्या नहीं होता ?

मृदुला आप-ही-आप आइने में मुस्करा पड़ी। खुशी से उसकी आँखें मुंद गयीं। लेकिन फिर खोलना चाहा, तो खुली नहीं। पीछे से किसी ने चुपके से आकर उन्हें हथेली से बन्द कर दिया था।

मृदुला ने कहा—“इटो, ... मैं समझ गयी। अभी से क्या अभिनय करने लगे ? यह स्टूडियो नहीं है ! ...”

“हाँ, स्टूडियो नहीं है। यह है श्रीमान् विजन कुमार और श्रीमती मृदुला देवी का प्राइवेट जॉज ... !”

“कौन, रमण ?”

खिलखिला उठा रमण और हाथ हटा जिये । मृदुला ने घूम कर देखा, तो वही.....!”

“क्या हो रहा था, भाभी अभी ?”

“कुछ भी नहीं तो !”

“तुम अब ऐक्ट्रेस होने जा रही हो, भाभी...कुछ हम लोगों का भो खयाल रहेगा कि नहीं ?”

“क्यों ?”

“भैया तो फिल्म के पीछे खूब हैं । तुम साफ-साफ बतलाओ भाभी, कि क्या तुमने ऐक्ट्रेस बनने का पक्का इरादा कर लिया है ?”

“इतना निश्चित है कि एक दफा डाइरेक्टर से अवश्य ही मिलूंगी । इसके बाद, कह नहीं सकती, क्या करूंगी । वबराभो मत, परसों तुम्हें मालूम ही हो जायगा ।”

“डाइरेक्टर से मिलोगी ?”

“क्यों, नुकसान क्या है ?”

“भाभी, आजकल के डाइरेक्टर बड़े चालाक होते हैं । उनपर सहसा विदवास नहीं किया जा सकता !”—रमण ने जापरवाह—सा कहा ।

“खैर, एक अनुभव मेरा यह भी रहे !”—मृदुला के स्वर में दृढ़ता थी ।

(४)

अभी पूरा पाँच भो नहीं बजा था कि विजय ने आकर कहा—
“तैयार हो जाओ । डाइरेक्टर के यहाँ चलना है ।”

मृदुला बोली—“मैं तैयार हूँ ।”

“बस, योही तैयार हो ?”

“तब और क्या ?”

“पाउडर, लिप-स्टिक, ...मैं तुम्हें क्या बताऊँ ?...और, देखो...

वह नीले रंग की साड़ी, “वह जम्पर, ... और ...”

“और, वह केश में दिलपसन्द जूड़ा ...” विजन ने देखा, तो वह था रमण, हँसने की कोशिश करता-सा !

“देखो, रमण ! तुम मौके पर भा गये । जरा भाभी को बता दो कि उसे क्या पहनना चाहिये । तुम उस्ताद हो; तुम्हीं ठीक-ठीक कह भी सकोगे ।”

“और हजरत ?”

“भाई ! एक टैक्सी के बिना ... क्या फिल्म ऐक्ट्रेस पैदल चलेगी ?”

रमण ने कहा — “भच्छा जाइये !”

मृदुला ने रमण का हाथ पकड़ कर खींच लिया — “इधर आओ !”

रमण ने कहा — “भाभी, आज तो तुम वाकई बहुत खूबसूरत लगती हो ।”

“सचमुच ?” — मृदुला बोली — और रमण को खींच कर ड्राइङ्गरूम में ले गयी ।

“तुम जानती हो, भाभी, कि फिल्म के डाइरेक्टर अपनी ऐक्ट्रेसों के साथ कैसे व्यवहार करते हैं ?”

“नहीं ।” — मृदुला ने अनजान-सी बनकर कहा ।

“वे रात में शूटिंग खत्म हो जाने के बाद, जिस किसी अभिनेत्री को, चाहे जिस वेश-भूषा में अपने प्राइवेट रूम में बुला सकते हैं । नाम के लिये कम्पनी का कोई प्रोप्राइटर हो, असल में मालिक वही होते हैं । जिसपर उनकी कृपा हुई, उसका सितारा चमका; जो उनके चंगुल में नहीं फँसीं, उसे फिर पूछता ही कौन है ?”

“यह बात है !” बालिका के सरल कौतुक और कौतूहल से मृदुला ने कहा — “तब तो मुझे जरूर जाना चाहिये ।”

“क्यों ?” — रमण ने मुसकरा कर कहा ।

मृदुला कोच पर लेट रही । और, एकटक रमण का मुंह निहारने

लगी। रमण अधीर हो उठा।

मृदुला ने जान-बूझकर अपना अंचल व्यस्त कर दिया। सिर के बाल खुलकर पीठ पर लहराने लगे और अद्भुत उल्लास में भरकर बोली—“रमण, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ।”

रमण चौंक उठा—“भाभी !” बात बिल्कुल नयी थी।

“हाँ, हाँ। इधर आओ, कोचपर जरा मेरे पास बैठो।”

रमण का कण्ठ कुण्ठित हो गया। स्वर नहीं निकला; चुपचाप बैठ गया।

मृदुला उठी और मूटकेस से बढ़िया रेशमी साड़ी निकाल लायी। रमण को दिखला कर कहा—“इसे पसन्द तो करो !”

“हाँ, अच्छा तो है !”

“मुझे पहना तो दो, ”

मृदुला को रमण साड़ी पहना दे ? छिः---छिः ! रमण कहाँ चला आया है !

उसने प्रदन-भरो दृष्टि से भाभी की ओर देखा।

“अच्छा, तुम ठहरो ! मैं खुद पहन लेता हूँ।”

साड़ी पहन कर उसने जम्पर बदला, बालों को सँभाला, पाउडर लगाया, और सब कुछ अजीब जापरवाही से, कुछ अजीब चुलबुला-हट से कर्भा हँसती, कर्भा सिर्फ मुस्करा ही देती; और कभी खिल-खिलाकर मचल जाता ! कर्भा तिरछी नजरों से देखती, कभी चुप हो जाती, और कभी गुनगुनाने लगती !

तब रमण भाभी को देखता और मन-ही-मन आकुल उत्कण्ठा से भर जाता—“आज, भाभी को क्या हो गया है !”

लेकिन, तब भाभी झूम-झूमकर गा रही थी—“आज माधवी राते, नील-यमुनाय...”

मृदुला ने नाचकर कहा—“मुझे पहचानते हो ?”

रमण को याद आया, एक रात थी—चाँदनी रात थी; नदी का

तट था। लहरों में नाव बह रही थी। उस नाव पर दो प्रेमी और प्रेमिका थे। दोनों, प्रेम-रस में नख से शिख तक शराबोर ! नाव लहरों से खेल रही थी, और प्रेमिका ने प्रेमी के गले में हाथ डाल कर कहा था—“मुझे पहचानते हो ?”

प्रेमी ने उसका आर्जितगन कर, उत्तर दिया था—“हाँ।”

अकस्मात्, रमण को मालूम पड़ा, जैसे किसी रमणी की आकुल बाँहें उसके कण्ठ की ओर बढ़ रही हैं—“मुझे पहचानते हो ?”

रमण सुख के आवेश में बेसुध हो गया। विह्वल होकर उसने कहा—“हाँ।”

“मैं कुसुम-कली हूँ।”

“और, मैं मधुका लोभी भौंरा हूँ !”

“मैं समुद्र की लहरें हूँ !”

“और, मैं आसमान का चाँद हूँ।”

रमणी के इवास रमण के अधरों के बिल्कुल नजदीक खिच-से आये और “इतने में बाहर पोर्टिको में ड्राइवर ने मोटर का हार्न बजाया—“बाबू, चलिये न !”

मृदुला जैसे चौंक पड़ी—“वह आ गये !”

रमण ने कहा—“हाँ, चलो।”

और, विजन बदहवास-सा आकर कुर्सीपर गिर पड़ा !

मृदुला सज-धज कर ड्राइङ्ग-रूम से बाहर निकली। रमण ने उलसित होकर कहा—“भाभी, आज तो तुम्हारा रूप चाँद-सा निखर उठा है ! भारत-फिल्म कम्पनी का स्टूडियो उज्ज्वल हो जायगा।

मृदुला ने गर्व से अपनी ओर एक बार देखा, मानो आज वह विश्व-विजय की कामना से निकली हो ! “कस्तूरी की गन्ध-सा सौंदर्य, यौवन उच्छृङ्खल” कामुकता से परिपूर्ण !

विजन कुर्सी पर सिर झुकाये बैठा था।

अरे, सो गये क्या “चलो न; देर हो रही है—मृदुला ने कहा।

“अब हम नहीं चलेंगे।”—बोला विजन।

“क्यों?” मृदुला आश्चर्य से अवाक थी!

“कम्पनी फेल हो गयी; उसका दिवाला निकल गया।”

“मजाक क्यों करते हो; चलो।”

“मजाक नहीं करता, मृदुला! मैंने अपनी आँखों से देखा है।”

“क्या देखा है?”

“देखा कि इतना सुन्दर तुम अभिनय करती हो ...”

“कि, कम्पनी भी फेल हो गयी! क्यों, भाई साहब!”—रमण,
जो अबतक चुप था बोला।

“लेकिन मैं तो ऐक्टिंग सीख रही थी।”

शायद विजन ने सुना नहीं; क्योंकि तबनक वह उन दोनों को
छोड़कर, बगीचे के फुट-पाथ पर टहलने लगा था; वजह यह कि वह
बेचैन था!



तीन हजार हवाई जहाज

(१)

बिल्कुल ताजी घटना है । अभी पन्द्रह दिन भी पूरे नहीं हुए हैं । मैं बर्लिन से भाग कर लन्दन पहुँचा था और वहाँ डाउनिंग स्ट्रीट में अपने एक अँगरेज मित्र के मकान पर ठहरा था । मेरे मित्र पार्लियामेंट के मेम्बर थे और भारत के हितैषी । इसलिये, उनसे मेरी पट जाती है !

जिस रोज मैं वहाँ पहुँचा, उस रोज लड़ाई के बारे तरह-तरह की भफवाहें उड़ रही थीं । लोग ऐसी बेसिर-पैर की बातें कर रहे थे, जो शायद शेखचिल्ली की कहानियों को भी मात कर दें ! जर्मनों ने पेलान कर दिया था कि तीन हजार हवाई जहाज लन्दन पर बम बरसाने के लिये भेजे जाँयेंगे ।

तीन हजार हवाई जहाज ! ... और, सिर्फ लन्दन-शहर पर ! नागरिकों में भयानक आतंक छा गया । लोगों में भगदड़ मच गई । जो भी सुनता, शहर छोड़ कर भागने की तैयारी करने लगता । लन्दन से देहात की ओर छूटनेवाली सभी ट्रेनें लोगों से खचाखच भरी रहती थीं ।

फिर भी, चेयरिंग क्रौस पर बदहवाश मुसाफिरों की भीड़ लगी रहती, जो माल-भसबाब छोड़ कर जान बचाने की कोशिश कर रहे थे !

रेडियो से कई बार प्रधान-मंत्री ने कहा कि डरने की बात नहीं । यह हिटलर की धमकी है ! किसकी ताकत जो, लन्दन पर एक भी बम गिराये ? हमारे छै हजार हवाई जहाज हर-वक्त उनसे मुकाबिला करने को तैयार हैं !

मगर, कौन सुनता है ? लोगों की घबराहट बढ़ती ही गई । सड़कों पर मोटरों का चलना बन्द हो गया । ट्रामें रुक गईं और शाम होते-होते तो लन्दन की तमाम सड़कें सुनसान हो गईं ।

अधिकाँश तो भाग ही गये थे । जो बचे थे, वे भी दिन दूबते ही घरों में छिप रहे । जिनके घर में तहखाने थे, वे उसी में बन्द हो गये । बाकी जो बचे, वे मिनट-मिनट पर अपने कलेजे की धड़कन सुनने और साँस रोक कर जर्मनों के बम बरसानेवाले हवाई जहाजों का इन्तजार करते ।

शहर की रोशनी गुल कर दी गई थी । सारा लन्दन मरघट की तरह प्रशान्त पड़ा था । बिल्ली भी कूदती, ता लोगों के कान खड़े हो जाते । चमगादड़ भी पंख फड़फड़ाते, तो, लोग डर के मारे चौंक उठते ।

तमाम चौराहों पर सशस्त्र पुलिस का पहरा था । टेम्स नदी के किनारे-किनारे, बालू से ढँकी खाइयों में, मशीन-गनों फिट कर दी गई थीं और पार्लियामेन्ट-हाउस, बकिंघम-पैलेस, ब्रिटिश-म्यूजिम जैसे महत्त्व-पूर्ण इमारतों पर फौजें तैनात कर दी गई थीं !

(२)

मेरे मित्र को यद्यपि इस बात का विश्वास नहीं होता कि जर्मन हवाई जहाज लन्दन पर गोला-बारी कर सकते हैं । फिर भी, इतना उन्हें मालूम था कि जर्मन-जाति दुःसाहसी अवश्य है ! पिछले महायुद्ध में जर्मन पनडुब्बों और वायुयानों ने योरप में जो आतङ्क मचा रक्खा था, उससे वे अनभिज्ञ नहीं थे । साथ ही, वे यह भी समझते थे कि

लन्दन पर, इस बीसवीं सदी में, आक्रमण करना खेज नहीं है !.....
फिर भी, वे चिन्तित थे ।

मैं सबसे नीचे की मंजिल में बैठा, अभी हाल की घटनाओं और
हिटलर की अमानुषिक हत्याओं की रोमांचकारी बातों पर कुछ सोच
रहा था । कि मेरे मित्र कहीं से आये । और, बोले—“तीन हजार
हवाई जहाज ! सोचो तो, सही !” जिस वक्त ये अग्नि के दानव
भीषण बम-वर्षा करेंगे, उस वक्त क्या लन्दन की लाश भी देखने को
मिलेगी ?”

मैंने कहा—“हिटलर पागल है । अभी उसने अपने ही आठ
हजार देश-वासियों को गोली के घाट उतार दिया है ! वह खून का
प्यासा है । जब-तक उसकी प्यास नहीं बुझती, तब-तक वह यों-ही
प्रलय मचायेगा ।”

‘मगर, तुम क्या खयाल करते हो ? वह हवाई जहाजों को
भेजेगा ?’

‘भेज सकता है । मैंने अपनी आँखों से बर्लिन में देखा है कि.....’
मेरी बातें खत्म नहीं हुई कि मेरे मित्र ने कहा—“सुनो, सुनो.....
बाहर कैसा शोर हो रहा है ?”

बाहर, निस्तब्ध सड़क पर, सन्तरियों के बूट खट-खट कर रहे थे ।
मैंने पूछा—“अगर इस वक्त सचमुच जर्मन के हवाई जहाज
पहुँच जायँ, तो तुम क्या करोगे ?”

वह ठठाकर हँस पड़ा—“पहले तो यही असम्भव है ! फिर, यदि
वे पहुँच भी जायँ, तो हवाई जहाजों का जबाब हवाई जहाज से दिया
जायगा । यह डाउनिंग स्ट्रीट है, भाई ! कोई तमाशा नहीं ! संसार
का शासन—सूत्र डाउनिंग स्ट्रीट में है । वह देखो, सामने प्रधान-मंत्री
का निवास-स्थान है । दुनिया के कितने राज-मुकुटों के भाग्य का निप-
टारा उसी छोटे-से कमरे में हुआ है ! लन्दन शहर मटियामेट हो सकता
है; मगर, डाउनिंग स्ट्रीट नहीं ! और, हमारी यह ताकत, यह फौज,

“ये एयरक्रैफ्ट गनें” आखिर, किस मर्ज की दवा हैं ? जिस वक्त हमारी वायुयान-विध्वंस तापें ज्वालामुखा के समान भाग उगलने लगेंगे, उस वक्त क्या जर्मन का कोई भी जहाज आसमान में टिका रह सकता है ? हिश !”

अचानक पूरब की तरफ भयानक शोर हुआ । मेरे मित्र ने घबरा कर कहा—सुनो, सुनो ! कहीं हल्ला हो रहा है ! “शायद, ……”

“शायद, जर्मन हवाई जहाज पहुँच गये !”

“ट्रैफेल्गर स्क्वायर की तरफ से आवाज आ रहा है !”

शोर-गुल धीरे-धीरे बढ़ता ही गया ।

मेरे मित्र ने कहा— “मैं प्रधान-मंत्रा को सूचना देता हूँ ! “पर-राष्ट्र-विभाग को भी इसकी खबर मिलनी चाहिये ! और, फील्ड-मार्शल …”

मैंने कहा— “खामोश रहो । मैं समझता हूँ, वे बेफिक्र नहीं होंगे । तुम्हारी जान ही क्यों इतनी भारी है, जो …?”

“तुम हिन्दुस्तानी हो । भाग कर कोने में छिप रहो । मैं चला । मेरे ऊपर पूरे कस्बे का जिम्मेवारी है ! …… गुड-नाइट !”

मैंने हँसकर कहा— “अच्छा, माफ करो !”

(३)

जो कोलाहल और चीत्कार ट्रैफेल्गर स्क्वायर के किसी कोने से निकला था, उसने अब भयंकर रूप धारण कर लिया । घण्टे-भर में ही प्लेग की तरह सारे शहर में आतङ्क फैल गया । सैकड़ों तार इधर-से-उधर खटखटाने लगे । टेलीफोन की घण्टी घनघना उठी और सड़कों पर फौजों के जत्थे ‘राइट-लेफ्ट’ करते नजर आने लगे ।

तो, क्या सचमुच जर्मनों ने अपने वादे को पूरा कर दिया ?

हाँ, कर दिया ! …

लन्दन के चारो ओर, हजारों मशीनगनें एक साथ ही दहाड़ उठीं ! भयंकर निनाद से कान के पर्दे फटने लगे । और, उसी वक्त,

मैंने देखा, डाउनिंग स्ट्रीट के नम्बर दसवाले मकान से कोई घबराया-सा उतरा और मोटर पर सवार होकर तेज़ा से निकल गया ।

दो मिनट के अन्दर, लन्दन का तमाम आकाश वायु-यानों से भर गया । बड़े-बड़े विशालकाय जहाज 'कर्ण-भेदा' निनाद करने लगे । रात का भयानक सन्नाटा रण-क्षेत्र के तुमुल कोलाहल में परिवर्तित हो गया । हवाई जहाज के पख कर्कश शब्द करने लगे । प्रगाढ़ अन्धकार था । और, उस अन्धकार में सैकड़ों वायु-यानों का चिल्लाहट घर्घर 'छाती की धड़कन बन्द होने लगी ।

कहाँ क्या हुआ, कुछ पता नहीं लगा । मैं सोच रहा था, कल हम लन्दन के खण्डहरों को देखेंगे । इतना विशाल नगर, सारे साम्राज्य की राजधानी, सभ्यता का केन्द्र, शक्ति की रंग भूमि संसार के राजनैतिक दाव-पेचों का अखाड़ा, रात हो भर में जलकर खाक ! वे खूबसूरत इमारतें, लम्बा-चौड़ा सड़कें, होटल और सिनेमा-भवन, कला और साहित्य के मन्दिर सभी नष्ट—अष्ट ! 'जर्मन-जाति, तेरा बुरा हो ! ' तूने जो विनाश का भट्टी सुलगाई उसमें एक दिन तू खुद जलकर भस्म हो जायगा !

लेकिन, मेरे मित्र ने सच कहा था । डाउनिंग स्ट्रीट में बम क्या, एक तिनका भी नहीं गिरा ! हवाई जहाज मँडराये जरूर; मगर, न जानें, क्यों किसीने कुछ बिगाड़ा नहीं ! ईर्ष्या का फकीर कहता है, मैं हवाई जहाज से गिरनेवाले बम को कागज का टुकड़ा कर देता हूँ । ईर्ष्या के फकीर का बात, चाहे, झूठ भी हो; लेकिन, यहाँ तो कागज का टुकड़ा क्या, हवा भी नहीं डोली !

सिर्फ निरन्तर भयकर वायु-यानों का कर्कश निनाद 'अत्यन्त तीव्र, जैसे प्रलय-मेघ की घर्घराहट या वज्र का विस्फोट' मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया ।

सुबह में तीन बजे के लगभग मेरे मित्र हॉफते हुए कमरे में आये—'कहो, कुशल तो है ?'

“हाँ, अभी तक तो...मैंने कहा।”

“एक बात जानते हो?” मेरे मित्र कहने के पूर्व खिलखिला कर हँस पड़े !

“कहो भी तो !” मैंने चकित होकर पूछा।

“इस बार कम्बख्त जर्मन बम लाना हाँ भूल गये !”

मैंने अवाक होकर कहा—“तीन हजार हवाई जहाजों में से एक भी नहीं !”

“बिल्कुल नहीं। मुझे तो सन्देह होता है कि शायद बम सब खर्च हो गये होंगे। भाई, पोलैंड-वाले भी बड़े बहादुर हैं। और, देखो ...फ्रांस की फौजें भी सिगफ्रिड लाइन पर पहुँच चुका हैं ! बेचारों कहाँ-नक बम बनावे ? एक आदमी रहे, तब तो ? यहाँ तो करोड़ों से मुकाबिला पड़ा है।”

“तो, ?”

“उन्होंने गरम पानी हाँ बरसाना शुरू किया।”

“इतना गरम पानी ? भला जहाज पर वे लाये कैसे ?”

“अरे, भाई ! जर्मन-समुद्र के तट पर सैकड़ों टन्कियाँ पड़ी हैं।

उसीमें पानी गरम हो रहा है। और, ये जहाज उसे भर-भर कर ले आते और ऊपर से बरसाते हैं !”

मैंने कहा—“जर्मन जो न करें, आश्चर्य है ! बम का जगह, यह पानी बिल्कुल नई बात है ! इतनी सस्ता चीज, किस वैज्ञानिक की यह मूर्ख होगी ? उसे तो नावल-प्राइज मिलना चाहिये !

“और, सुनो ! सिर्फ पानी हाँ नहीं था। उसमें कार्बोनाईड पत्तियाँ-जैसी भी कोई चीज थी। मुझे शक है, वह जरूर कोई विस्फोटक पदार्थ रहा होगा। अभी-तक कोई दुर्घटना नहीं हुई है। मगर, भाई ! सच बात तो यह है कि जर्मनों के दिमाग में गोबर नहीं है। प्रधान-मंत्री ने भी उसका मुलाहिजा किया था, मगर, दूर ही से। इस वक्त वह स्काटलैन्ड-यार्ड में है। कल वैज्ञानिकों की एक परिषद् बैठेगी, जो

उसके रहस्य का उद्घाटन करेगी ।”

(४)

सुबह में उठकर, मैंने पहले सारे शहर को घूम-घूम कर देखा, कहीं एक ईंच जमीन भी नहीं खिसकी थी । पैलेस, ब्रिज, सेक्रेट्रियेट, सभी ज्यों-के-त्यों थे । नेल्सन का ऊँचा स्मारक भी सीधा खड़ा था !

फिर, “जर्मनों का यह कोई चालबाजी तो नहीं था ?

दोपहर में खाना खाने के वक्त मेरे मित्र ने खिलखिलाते हुए कमरे में प्रवेश किया । और, मुझे देखकर तो वह और जोर से अट्टहास कर उठे । मुझे ताअज्जुब हो रहा था, ऐसी भी हँसी, जो भर-मुँह बोलने भी न दे !

कुछ देर के बाद जब उनकी हँसी आपही रुक गई, तब मैंने पूछा—
‘आखिर, बात क्या है ?’

बजाय कुछ बोलने के, वे फिर खिलखिला पड़े । मैंने छेड़ना उचित नहीं समझा । चुपचाप उनका मुँह देखने लगा ।

एकाएक वे सँभल गये । बोले—‘अभी मैं प्रधान-मन्त्री के कमरे से आ रहा हूँ । वहाँ एक गुप्त-समिति बैठा थी । मैं भी निमंत्रित था ।’

“क्या, कुछ नई खबर है ?”

“हाँ, पता लग गया ।”

मैंने उत्कंठित होकर पूछा—‘क्या पता लगा, कुछ कहो भी तो ’’

“मगर, उसके पहले एक कहानी सुना दूँ, तो कोई हर्ज है ?”

मैंने कहा, हर्ज है !

“लेकिन, मैं पहले कहानी ही कहता हूँ ।” और मेरे जवाब की प्रतीक्षा किये बिना ही वे कहने लगे—‘ट्राफ़ल्गर स्क्वायर में एक शख्स रात के ग्यारह बजे उठा और, मालूम नहीं, उस पर कैसी शामत सवार हुई कि स्टोव जलाया ! बगल के कमरे में उसकी बीबी सोई थी । जर्मन हवाई जहाजों के आक्रमण की अफवाह गरम थी ही । नींद में उसको मालूम पड़ा, जैसे सचमुच हवाई जहाज आकाश में ‘घर-घर’

कर रहे हों। उसने उठकर बेतरह शोर मचाना शुरू किया। मुहल्ले के लोग भी कार्फा चौकन्ने थे। कहीं हल्ला हुआ कि चारों तरफ से भयभीत जनता चिल्ल-पों करने लगी। मिनट-भर के अन्दर ही इतना शोर मचा कि अड़ोस-पड़ोस गूँज उठा। बाबा जा घबरा कर कमरे में आई, तो देखा, स्टोव 'फर-फर' कर रहा है। और, मियाँ बर्तन के गरम पानी में इतमानान से चाय डाल रहे हैं। गुस्से के मारे उसने चायदानी छीनकर बाहर सड़क पर फेंक दी। और, संयोग से वह चायदानी गिर पड़ी, एक पुलिस-मैन के ठीक सर पर जो पहरे पर तैनात था। फिर क्या था, बिजली की तरह खबर उड़ गई कि जहाज पहुँच गये। फिर भी, मियाँ को अपनी चायदानी का कम अफसोस नहीं था! वे छत पर से ही टार्च जलाकर देखने लगे कि आखिर, उसे किसीने हड़प तो नहीं लिया! और, ऊपर से टार्च की रोशनी का आना था कि लोगों की रही-सही शंका भी दूर हो गई! सब ने समझ लिया कि बम गिराने के लिये आसमान से निशाना लिया जा रहा है! तीन हजार जहाज! इसके बाद जो हुआ, तुम्हें मालूम ही है!"

मैं तो सुनकर दंग रह गया। कहा—“तुम्हें उस मियाँ—बीबी को बधाई देनी चाहिये। और, सम्राट् को भी चाहिये कि इस सेवा के लिये उन्हें हिन्दुस्तान के किसी प्रान्त की गवर्नरी दे दें!”

“हाँ, इसका भी इन्तजाम हो चुका है। वे दोनों गिरफ्तार हो चुके हैं। अब बच्चू को होश होगा, कि, ...” मेरे मित्र ने कहा—और, जानते हो? जरा-सी बात के लिये, रात सरकार के पचास हजार पौण्ड खर्च हो गये! दौड़-धूप और परेशानियाँ अलग!”

“हवाई जहाज भी तो तीन हजार थे!” मैंने कहा—“इस जिहाज से खर्च में क़िफायत ही की गई!”

मित्र की पत्नी

परसों ही तो विनय ने लिखा था कि श्रीमती जी मायके जा रही हैं। उनका द्वादा है कि रास्ते में उतर कर कामिनी देवी से मुलाकात करती जायें। अगर पहुँच गई, तो खातिर में कर्मा न हो।

और आज शीला को अपने सामने देखता हूँ। तौंगे से अभी अभी उतरी, मुस्कुराती हुई, दोनों हाथ जोड़ कर कहा—“नमस्कार !”

एकबार तो मैं अवाक हो गया। सिर की चोटी से लेकर पैरों की नाखून तक नये रंग में रँगी हुई, जवानी जिसके सर पर जादू-सी चढ़ कर बोल रही हो, वही तरुणी एक रमणा के रूप में देखकर ही मैंने पहचान लिया और मैंने भी मानों एक स्वप्न से चौंक कर कहा—“नमस्कार !”

विनय कुमार मेरे उन मित्रों में एक हैं, जिन्हें मेरी घनिष्टता प्राप्त है। और शीला विनय की पत्नी। पढ़ी-लिखी है, नई रोशनी को देखा है और नये भावों को समझ कर अपनाया भी है।

स्त्रियों से मिलने-जुलने का अवसर मुझे बहुत कम मिला है। यों देखा है बहुत ज्यादा। लेकिन, रुबुरु बैठकर मन का दो बातें कर लेने का मौका मुझे कभी नहीं मिला। यह पहली बार जो मैं एक स्त्री से इतना खुल कर मिला, वह शीला ही थी।

मुझे अपने चरित्र पर अभिमान है फिर भी इतना मैं जरूर कहूंगा कि उन लोगों में जो प्रतिदिन 'परदारेषु मातृवत्' का माना जपते, तिलक लगाते और मभा-मोसाइटियों में ब्रह्मचर्य के नाम पर आँसू बहाते हैं, अधिकांश व्यक्ति एक नम्बर के बेइमान, पाखंडी तथा ढोंगी हैं। इसलिये, शीला का देखकर पहले तो मैं बेहद घबड़ा गया। लेकिन, यह घबराहट था मेरी खुशी का। असीम प्रसन्नता के कारण मेरा कण्ठ आकुल हो उठा। और, अगर ऐन मौके पर कामिनी नहीं आ जाती, तो न मालूम, प्रवाह में क्या-क्या कह जाता ?

और क्षण ही भर में वे दोनों आपस में इतनी घुल-मिल गईं, मानों वरसों का जान-पहचान हो !

शीला का हाथ पकड़ कर कामिनी उसे अन्दर खींचती हुई ले चली। और, मैंने जिन्दगी में पहली बार महमूस किया, मेरा दिल इतना कमजोर क्यों हो गया है ?

मुझसे जैसे कोई चीज बाहर निकल कर आरामान के असीम सुनोपन में खो-सा गई है और मैं उसे ढूँढता हूँ, लेकिन मिलता नहीं ! मेरे पैर डगमग कर रहे हैं, मैं फिसल कर गिरना चाहता हूँ, लेकिन फौरन अपने को संभाल लेता हूँ :

और यह शीला मेरे मित्र की पत्नी है। ऐसा मित्र, जो मेरे अपने ही हृदय का एक खण्ड है, अभिन्न है, विनय के नाते ही शीला को मैं अपने से इतना नजदीक पाता हूँ ? मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि विनय का मित्रता ही शीला के प्रति मेरे इतने आकर्षण का कारण हो सकती है, फिर भी, एक खिचाव तो था ही, इसमें संदेह नहीं !

लेकिन कामिनी मेरी पत्नी है, जिसे मैं प्यार करता हूँ। प्यार

की चीज को सभी अच्छी कहते हैं। मगर मेरी कामिनी बुरी नहीं। मेरे जीवन के पाँच साल उसके साथ हँसते-खेलते बीते हैं। मैंने उसमें कभी कोई ऐव ढूँढ़ने की कोशिश नहीं की। लेकिन, आज जैसे मालूम हो पड़ा, यह कामिनी भी पूर्ण नारी नहीं है। उसमें भी एक अभाव है। अभी तक मैं कामिनी को एक ऐसा लकीर समझता था, जो सबसे बड़ी थी। आज किसाने उसके पास ही जो यह एक बड़ी-सी लकीर खींच दी, तो वह आपही छोटा जँचने लगी।

शीला चली गई। आँखों से ओझल हो गई। लेकिन, मेरी आँखों के आगे उसकी छाया बनी ही रही। हलके फिरोजा रंग की जार्जेट की साड़ी, तलवे से चिपके लाल-लाल चप्पल और वह गोरा, खिलता हुआ हँसमुख चेहरा !

कामिनी ने एक सहेली पाई और मैं अकेला हो गया। तमाम दिन उसके साथ बातें करती रही। नई चाज को पाकर अक्सर जाग पुराना चाजों को भूल जाते हैं। यह कोई नई बात नहीं कि शीला के आते ही मैंने कामिनी को खो दिया।

रात में दोनों एक साथ ही सोई। उसी कमरे में और उसी कोच पर, जहाँ कल तक कामिनी और उसके पति थे। आज पति का स्थान शीला ने लिया।

बीच में एक बार तबीयत जब बहुत बबड़ाई, तब किताब लेने के बहाने वह पढ़ूँचा। देखा कि वे दोनों आपस में गुँथी हैं और चुहल कर रही हैं।

“वे अकेले हैं ?”

“तो मैं क्या करूँ ?” कामिनी ने हँस कर कहा।

“जाकर सो रहो।”

“और तुम ?”

“मैं अकेली सो रहूँगी।” शीला बोली—“मुझे डर नहीं लगता ”

“और वे क्या डरपोक हैं ?”

“तुम मेरा मतलब नहीं समझा।”

“इतनी नादान नहीं हूँ बहन।” कामिनी ने कहा—

“मगर, यों तो रोज ही सोती हूँ और आज जब तुम आगई हो……”

कि, बीच में ही मुझ पर नजर पड़ गई—“अरे, आप कब से यहाँ खड़े हैं ! इस तरह चोर की तरह……”

“तुम्हीं को बुलाने आये हैं !” शीला ने शांसी से कहा, मुझ से—
“ले जाइये इन्हें। अरे, उठो न बहन ! मैं तो हार गई ! इतना मान ?”

मैंने जरा झंपते हुए कहा—“तुमने ‘कोला’ की ‘पॉलिटिकल इकानामा’ देखी है, कामिनी ?”

कामिनी जैसे चिढ़ कर बोली—“इन्हें जब देखो, तब कोल—किरात हाँ सूझते हैं।”

“अच्छा, बाबा !” मैंने कहा—“मैं जाता हूँ। खूब मेरी शिकायत कर।”

और नीचे आकर मैंने रेडियो खोल दिया, अच्छा नहीं लगा। समाचार में धरा हाँ क्या है ? और यह विलायत खाँ का सितार, नारायण राव का गाना, मिस मुन्नी के गीत, किसी का रंग नहीं जमता। स्वीच आफ कर दिया।

रात के दस बजे थे। आँखों में भरपूर नींद भर कर मैं सो रहा। मगर, नींद ने तो पहले ही कसम खा ली थी। वह आये भी तो क्यों ?

उपर के ताले से खिज्खिजाहट की आवाज आ रही है और मैं नीचे ड्राइंग-रूम में बैठा सोच रहा हूँ कि यह शीला भी क्या है ? इतना जो खुल कर हँसती है, इतना जो खुलकर बोलती है, ट्रेन में अकेली सफर कर लेती है, निः संकोच सबसे मिल लेती है—इसका राज क्या है ?

कामिनी को अभी बहुत कुछ सीखना बाकी है। और, अब तो

साँस भी नहीं सकती। वे दिन गये। कोंपल ही झुक सकता है, बाँस नहीं।

शाला हम लोगों से मिलने हाँ भर के लिये आई थी। वह काम हाँ चुका। सुबह में उसे चली जाना चाहिये। मुझे रोकने का कोई हक नहीं था। मगर, सबेरे जब वह चलने के लिये तय्यार हुई, तब मेरे मुँह से निकल पड़ा—“आज भर रह जाइये। अभी जल्दी क्या है?” और, वह रुक गई। क्योंकि मेरे कहने के साथ हाँ कामना न भी शाला के दोनों हाथ पकड़ लिये थे,

लेकिन, मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि कामिनी के हाथ पकड़ने में जो भी भाव रहे हो, मेरे रोकने में एक मोह था।

शाला कितना उन्मुक्त है। जैसे जंगल का चिड़िया। जिस डाली पर, चाहे जितने दिन बिता ले। कोई रुकावट नहीं।

और यहाँ पर मैं हार गया। और, जिस काम को मैं कोशिश करने पर भी न कर सका, उसे स्वयं शाला ने पूरा कर दिया।

वह दिन में दो, तीन मरतबे मेरे नजदीक आई और हँसी और बोली भी। और हर दफे ऐसा जान पड़ा, जैसे मैंने कोई न कोई चीज खो दी। चाँद के सामने जैसे दीपक की रोशनी फाँका हो जाती है, वैसे शाला के सामने कामिनी निस्तेज मालूम पड़ा। लेकिन, शलभ तो दापक पर मरते हैं, चन्द्रमा के प्रकाश पर नहीं।

और यहाँ भी मैंने भूल का।

कल हाँ कर जब वह फिर जाने को तय्यार हुई, तब मुझे सारी दुनिया सूनी-सी दिखाई पड़ने लगी। मैंने कामिनी से आग्रह किया कि वह किसी तरह शाला को कम से कम आज भर भी रोक ले। और जब शाला रुक गई तब मैंने सोचा—“लेकिन, इस तरह कब तक?”

‘इस तरह कब तक तुम शाला को रोक सकोगे।’ मेरे मन ने प्रश्न किया—“पागल तो नहीं हो गये हो? छिः! छिः!”

जवाब भी उसीने दिया—“एक प्यास है, भले आदमी! स्वाती का एक बूँद यदि आकाश से गिर कर किसी चातक की प्यास

मिटा दे, तो इस में मेव का क्या नुकसान ? आशा और विश्वास के बल पर ही तो दुनिया कायम है ।”

और, तब बढ़ाने हँदे जाने लगे । कर्मा घड़ी का सुई सुस्त कर दी जाती, कर्मा सामान हाँ चुरा कर रख लिया जाता और कर्मा जानबूझ कर टूटन मिस करवा दा जाता । एकबार तो स्टेशन से भी वापिस हो जाना पड़ा ।

लेकिन, सच तो यह है कि ओस चाटने से प्यास बुझता नहीं, बढ़ती है । मैंने सोचा था कि यह जो एक उत्कण्ठा उत्पन्न हुई है, वह दो चार दिनों के सहवास से धीरे-धीरे आप ही कम हो जायेगी । परन्तु, आग जो सुलगी था, वह बुझने के बजाये बढ़ती ही चली गई । जिसको मैंने दवा समझा, वह तो दर्द को और भी उभाड़ता गया ।

आखिर, एक दिन मैं बेचैन हो गया । शाला को देर हा रही थी । मायके में उसके यहाँ लड़के की शादी थी । अगर शादी के दो चार रोज पहले हाँ वहाँ न पहुँचा तो घर में कौन-सा मुँह दिखलाती !

मैं इस प्रणय नाटक का अन्त साच कर कातर हो उठा । सच तो आखिर यह कब तक ? चाँदनी के बाद फिर अंधेरी रात ।

और, तब तक जो प्यास,.... मैं गलत कहता हूँ, क्योंकि अब वह प्यास नहीं रह गई था, ... जो भूख, आत्मा का, मन की भूख था, अब शारीरिक संयोग की एक आँधी बन कर हाहाकार करने लगा थी । और उसका भयानक गति में सूखे पत्ते का तरह मेरा सारा विवेक उड़ गया ।

अब मैं तार्किक हो चला था । सागर में से अगर एक घड़ा पानी के हाँ लिया गया, तो इसमें सागर का हानि ही क्या है ? प्रेम मुक्त है । उसे कोई भी सीमित नहीं कर सकता । हवा को किसने रोका है ? छाते का काम है, जिस के सिर पर है उसको पानी से बचाये, वर्षा को वह कैसे बन्द कर सकता है ?

तो फिर उपाय क्या है ?

क्या उससे स्पष्ट शब्दों में कह दिया जाये कि...

ना, ना ! मुझ में यह हिम्मत नहीं कि उसके रूबरू ऐसी बातें करूँ । मैं कमजोर हूँ । इतना कमजोर कि उसके आगे पाप की मूर्ति लेकर खड़ा होना भी मुश्किल है ।

तो, क्या मैं पाप कर रहा हूँ ?

पाप-चाप मैं कुछ नहीं जानता । भूखे को अन्न चाहिये, प्यासे को पानी । जीवन के लिये कोई भी काम करना पाप नहीं हो सकता, पुण्य चाहे न भी हो । मुझको इसमें सुख मिलता है, मेरी आत्मा को तृप्ति मन को सन्तोष, तो मेरे लिये यह अधर्म नहीं है ।

और काफी सोंच विचार करने के बाद मैंने एक चिट्ठी लिखी । लिखा, प्यारा शीला, तुम मेरे मित्र की पत्नी हो; ऐसा मित्र, जिसमें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है । फिर मुझमें और तुममें हाँ यह अन्तर क्यों रहे ? गणित के अनुसार, मैं अपने मित्र को प्यार करता हूँ और वह तुम्हें, इस लिये मैं भी तुम्हें प्यार करता हूँ, इस में सन्देह करने का कोई कारण नहीं । मैं तुम्हारे केश-जलदों का मयूर हूँ, तुम्हारे प्रेम का भिखारी हूँ और तुम्हारे रूप स्वाती का प्यासा चातक हूँ । मुझे केवल एक बूँद जल चाहिये । मेरी प्यास मिट जायेगी । हृदय की इसी प्यास के लिये मैं तुम्हें गोक रहा हूँ लेकिन, यह कब तक ? एक रोज, मैं जानता हूँ, तुम यहाँ से चली जाओगी । उस दिन मेरी दुनिया में आग लग जायगी । और मेरा जीवन मुश्किल हो जायगा । क्या प्यासे को जिन्दगी भर के लिये यों ही तड़पता छोड़कर चली जाओगी ? नहीं, नहीं, तुम इतनी निष्ठुर नहीं बनोगी । तुम ऐसा नहीं करोगी । मैं मर जाऊँगा । आज मैं इन्तजार करूँगा कि तुम...

लिख ही रहा था कि सहसा कामिनी कमरे में आ गई । मैंने फट उस चिट्ठी को कागज की ढेर में छिपा दिया । मेरे चेहरे पर हवाईया उड़ने लगी कि कहीं वह मांग न दे ! लेकिन, नहीं । वह कनखियों

से एकबार सिर्फ मुझे देख कर बाहर चली गई ।

उय्यो-त्यों करके मैंने पत्र पूरा किया, लिफाफे में डाला और सोचा कि उसे दे दिया जाय । बात तो बहुत आसान थी । किसी बहाने खत उसके हाथों में पहुँचा दिया जाता और वह उसे पढ़ कर फौरन जवाब दे देता । न सामने होने का झंझट और न बातें करने का आफत ! मगर सवाल तो यह था कि आखिर उसे दे कौन ? बिल्ला का गले में घंटी कौन बांधे ? डाक से भी तो नहीं भेजा जा सकता । फिर उपाय क्या है ?

सोचते—सोचते मेरी आँखें चमक उठी । बस, ठीक है । यह तरीका सब से उम्दा है । सॉप मरे और लाठा भी न टूटे ।

बहुत देर के बाद शाम हुई । अब यदि कामिना का सिनेमा भेज दिया जाय, तो "

तो, घर में रह जाऊँगा और अकेला शाला.....भगवान् जानता है, मेरे दिल में कोई मैल नहीं है । मैं बिल्कुल साफ हूँ ।

लेकिन, अकेली कामिनी क्या सिनेमा जाँयगी इसे कोई शक तो नही होगा ? अजी हुआ करे । प्रेम और युद्ध में कोई अन्याय नहीं । झूठ न बोले तो दुनिया का कोई काम ही न चले । कह दूँगा, तुम्हारे भाई साहब सिनिमा-हॉल में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं । जल्दी जाओ । नहीं तो मुलाकात नहीं हांगी ;

और, रात को ९ बजे तक बाजार में निरुद्देय चक्कर लगाकर जब घर लौटा, तब पत्नी से जाकर कहा—“सुनो तो ।”

“क्या ?”

“आज तुम्हारे भाई साहब आये हैं ।”

“अजी झूठ कहते हो !”

“सच !” मैंने मुँह बना कर कहा—“तुम्हारी कसम ।”

“तो उन्हें कहाँ छोड़ आये ?”

“सिनेमा में !” मैंने कहा—बड़ी अच्छी फिल्म है । मैं तो पटने में

उसे देख चुका हूँ । वे नहीं माने । कहा, देखकर ही जायेंगे । आज कल तो यह हालत है कि रिश्ता टूट जाय, मगर फिहम नहीं ।

और यह सेकेण्ड शो का वक्त था । कामिनी ने कहा—शीला बहन तैयार हो जाओ । चित्रा चलना है । “शीला नहीं जायगी ।”

मैंने कहा “क्यों ?”

“तुम भी विचित्र हो । एक दिन के लिये आई और तुम उन्हें तमाम देखने—दिखाने लग गई ।”

“अच्छा, भाई । रहने भी दो अपनी स्पाच ! शीला देवी नहीं जायेंगी । श्रीमान् नहा जायेंगे । श्रीमता कामिनी देवी अकेला चली जायेंगी ”

“क्यों तुम्हें तो कोई आपत्ति नहीं है ?” उसने पुनः शीला की ओर मुड़ कर कहा ।

“नहीं, बहन ।” शीला बोली—“तुम्हारे पति से ?”

मुझे यह उम्मीद नहीं थी कि कामिनी इनकी जल्दी जाने को तैयार हो जायगी । लेकिन, कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि जो काम पहले मुश्किल मालूम पड़ता है, वहां वक्त पड़ने पर इतना आसान हो जाता है कि देख कर आश्चर्य होता है ।

और मेरे देखते-देखते कामिनी वहाँ से चली गई ।

कामिनी के चले जाने के बहुत देर बाद तक मैं इस असमंजस में पड़ा रहा कि अब क्या करना चाहिये ? पारे का तरह दिल भागा-भागा फिरता था । कहीं एक जगह स्थिर नहीं रहता था । बहुत कोशिश की, तो थोड़ा-सा दिल कड़ा हुआ । और मैंने उपर के कमरे में धीरे से झाँका । देखा, शीला एक उपन्यास पढ़ने में व्यस्त है । प्रकाश में दमकता-सा, सोने का उसका मुँह और नाक की बगल में गोरे-गोरे गाल पर एक छोटा-सा काला तिल ! कितना भला मालूम पड़ता था जैसे चन्द्रमा के विम्ब में स्याही की एक काली-सी बूँद पड़ गई हो चाहा कि एक हाँ घूँट में उस रूप-माधुरी को पी जाऊँ ! परन्तु ...

बिछा की तरह दबे पाँव मैं वहाँ से लौट आया । और जबरदस्ती एक किताब पढ़ने लगा । लेकिन, मन को तो कोई और ही खींच रहा था । अक्षर सूखते ही नहीं थे । आधे घंटे के बाद फिर उस कमरे में गया, जिसमें शीला सोती थी । और सौभाग्य से इस बार कमरे का रोशनी बुझी थी । दरवाजे पर आते-आते मैं ठिठक गया । कहीं वह जगी न हो ! मेरी साँस रुकने-साँ लगा और दिल वेग से धड़कने लगा । अपने ही घर में मैं चार की तरह उन अँधेरे में, धीरे-धीरे पाँव बढ़ाने लगा ।

शीला सो रही थी । उसकी साँस मेरे कानों में वंशी-ध्वनी-सी मधुर लगती थी । चारों ओर पूर्ण निस्तब्धता थी । मैं आकर बिछावन पर बैठ गया । कलेजा जैसे पहलू को चार कर उड़ जाना चाहता था । दोनों हाथों से मैंने उसे दबाया । और शीला ने करवट ली ।

मैंने काँपते हुए स्वर में कहा—“शीला !”

लेकिन, शीला बोली नहीं । लगभग बाँस मिनट तक फिर खामोशी रहा । पर, इस तरह कब तक काम चलता ? कल ही तो शीला चत्ता जायगा मेरा संसार मिट्टी में मिल जायगा । अरमान अधूरे रह जायेंगे । और, समय भी तो नहीं है सेकेन्ड शो ग्वैटम होते ही कामिनी भा आ जायगा । फिर मेरा सारा प्रपंच व्यर्थ . व्यर्थ . !

मैंने एकबार फिर हिम्मत की और शीला के कोमल शरीर पर अपना हाथ रक्खा । आश्चर्य, ... वह न हिली, न डुली, कोई एतराज नहीं । उसका वह स्पर्श, मेरे प्राणों में जैसे बिजली कौंध गई । क्या यही शीला है, जो मेरे सामने गर्मों के दिनों में एक ग्लास ठंडे पानी की तरह... इतनी आसान,..... जब जाँ चाहा उठा कर पी लिया ! इतनी दुर्लभ मैं उसे क्यों समझता था ?

जाड़े की आधी रात में ठंडी हवा का एक तेज झोंका आया और शराबी की तरह जड़ें खड़ा कर मैंने अपने शरीर को उस लिहाफ के अन्दर डाल लिया, जो शीला ओढ़े हुई थी । और तत्काल मेरे रोम-रोम

उसके कोमल अंग के स्पर्श से पुष्कित हो उठे। तब मुझे लगा कि मणि की कीमत साँप के लिए भूके हाँ जान से भी बढ़कर हो। किन्तु, एक नारी का सतीत्व, इतना सुख कि जापानी खिलौनों से भी सस्ता सम्भव है।

और, गुलाब के इस फूल की गन्ध कामिनी को भी लगी होगी। इस स्पर्श का अनुभव उसे भी हुआ होगा। ये गोरी-गोरी भुजाएँ, उन्नत वक्ष, पल्लवों से अधर..... और मेरे प्राण उसके प्राणों से खेलने लगे। उसके यौवन की ज्वलन्त मदिरा पी कर मैं अपना सुध बुझ खो दी।

और, और—मेरी खुमारी उस वक्त टूटी, जब किसीने आइस्ते से दरवाजे को बाहर खटखटाया। वह कामिनी थी, जो सिनेमा से लौट कर आ गई थी।

और, तब तक अँधेरे कमरे में काफी सन्नाटा छा गया था। शीला देवता के शिर पर एक फूल की तरह समर्पित हो चुकी थी। मैंने अपने मित्र के प्रति-विश्वासघात किया और विजय का रक्तचन्दन लजाट पर लगा, निर्मात्य के समान शीला को वहीं छोड़, अपने कमरे में आकर बेहोश-सा बिछावन पर गिर पड़ा। फिर रात-भर न मालूम क्या हुआ!

सबरे-सबरे किसीने मुझे झकझोड़ कर जगा दिया और मैं आजस्य से विजडित नयनों को खोल कर देखा, कामिनी हँस रही है और कह रही है—“उठो, उठो! शीला देवाँ जा रहा हूँ।”

और, मेरे उठते-उठते शीला भी पहुँच गई।

बोली—“नमस्कार!” ठीक उसी तरह, जिस तरह पहले दिन, तब वह यहाँ आई थी और आपही मुस्करा उठी थी। प्रभात खिल उठा।

मैं कुछ सोच न सका, क्या किया जाय? वह चल दी, मंत्र-मुग्ध की तरह मैं उसके पीछे-पीछे तांगे तक आया। कामिनी उसे स्टेशन पर बिदाई देने के लिये साथ हो ली। मैं खाली-खाली वहीं से लौट आया।

एक घन्टे के बाद कामिनी स्टेशन से लौटी। भाते ही खिलखिला उठा। यह असमय में खिलखिलाहट कैसी ? पगर्बा कामिनी... .. मेरे दिल को क्यों..... मसल रही है ? चुटका लेता हुई बोली—
“क्यों, शीला के चले जाने से आपको वेहद तकलीफ हुई है न !”
“नहीं, तो” मैंने कहा।

“चलिये, चलिये !” कामिनी ने हँस कर कहा—“चोर पकड़ लिया गया है। सामान के साथ। आप छिपाते क्यों हैं ?”

मैं नख से शिख तक काँप उठा। बोला “मुझे परीशान मत करो, कामिनी सच बताओ कि बात क्या है ?”

“अर्जी, वाह ! एकान्त का आनन्द लें आप और जानूँ मैं ?”

मैं अवाक था।

“सिनेमा में मेरे भाई साहब आये थे न ? कोई सुई तो थे नहीं, कि खो जाते !”

“मैंने तो देखा था उन्हें। तुम लेट कर गई, शायद वे चले गये हों।”

ऐसी बात नहीं। आपने जान-बूझ कर मुझे घर से बाहर भेज दिया था। अगर यही इरादा था, तो साफ-साफ मुझे कहते। शीला कोई पराई तो नहीं थी।

“अपने को भ्रम में मत डालो, कामिनी ?”

वह फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी

“बड़े सीधे बनते हैं आप ? जैसे कुछ जानते ही न हों ! साहब, सुनिये तो। आप इतने परीशान क्यों हैं ? मैं भ्रम में नहीं हूँ। आपने स्वयं अपने को भ्रम में डाल रखा है।”

“कैसे ?”

“मुझे सिनेमा भेजकर और शीला को... .. एक मित्र की पत्नी, जो आपकी अतिथि थी, ... और कहूँ ?”

“नहीं, नही ! अब ज्यादा कहने की जरूरत नहीं। तुम्हारा

दिमाग ठीक नहीं है। मुझे छोड़ दो। माफ़ कर दो।”

“फिर वही बात। मैं पूछती हूँ, शीला ने क्या कोई एतराज किया? अगर नहीं किया, तो इसमें मेरे गुस्सा होने की कौन-सी बात है? यह तो अपनी-अपनी रुचि है। मैं कौन हूँ, जो आपके और शीला के बीच में बोलूँ? बल्कि मैं खुश हूँ कि

“कामिनी, मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया।”

“मेरे साथ?” कामिनी बोली—“नहीं। यों कहो कि विनय बाबू के साथ, उनकी पत्नी शीला के साथ। मैं तो रास्ते का एक पत्थर हूँ। जिसे कोई भी किसी क्षण दूर फेंक सकता है।” कह कर वह चुप हो गई।

मेरी छाता पर मानों किसीने हिमालय जैसे पहाड़ को रख दिया। मेरा दम घुटने लगा। कामिनी के सामने मुँह दिखाना भी , ओह ! मैंने दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया। और मेरी आँखों में आँसू छलकना आये। बच्चों की तरह मैं रो उठा।

“मुझे क्षमा कर दो।”

“लेकिन, वह शीला भी हो, तब तो?” मेरे सिर पर मीठी-मीठी थपकियाँ देती हुई कामिनी बोली—“भले आदमी, उठो भी तो?”

“क्या कहा?” मैं चौंक पड़ा।

“यही कि जिसे तुमने शीला समझा था, वह वास्तव में शीला नहीं थी।”

“तो,.....?”

“वह थी श्रीमती कामिनी देवी।”

“और शीला?”

“मेरे बदले शीला ही सिनेमा चली गई और मैं उसके स्थान पर.....”

“सूठ ! सूठ !” मैंने चिल्ला कर कहा—

“मुझे भुजावा मत दो, कामिनी !”

“सच कहती हूँ वह शीला नहीं थी। विश्वास करो।”

“तो क्या वह सचमुच शीला नहीं थी?” मेरा कंठ भर आया—
“लेकिन इसका प्रमाण?”

“प्रमाण चाहते हो?” कामिनी ने कहा—“तो यह लो।” और उसने मेरा वही चिट्ठी मेरे आगे रख दी, जिसे मैंने शीला के नाम से लिख कर दरज में डाल दिया था।

झपटकर मैंने वह चिट्ठी कामिनी के हाथ से ले ली और तत्काल उसे फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया।

“तुम्हारी, नीयत से हम दोनों पहले ही वाकिफ हो चुकी थीं और मेरे ही अनुरोध से शीला ने यह खेल रचा था। जानते हो, मेरी ही वजह से शीला तुम्हें नहीं मिल सका। कमूर मेरा है और इसका सजा मुझे होनी चाहिये।”

त्रिशंकु की तरह मैं स्वर्ग से गिरा और आसमान में लटक गया। मेरे काटो तो खून नहीं। तो, क्या इतना परिश्रम.... इतना प्रयास, ...व्यर्थ ! एक साथ ही दर्प, ...विस्मय,.... पश्चात्ताप,..... मैं व्याकुल होकर बोला—“सजा ? सजा ? तुम सजा चाहती हो ?”

“हाँ छुट्टा से मुँह फेर कर कामिनी बोली और मुस्करा दी।”

“हे निर्दय !” और मैंने उसको अपनी भरपूर बाहों में भर कर अधरों से उसके कपोलों को सरस करते हुए कहा—“हे छत्ती, तुम्हारी सजा यही है !”

खेत का घूर

जगिया गाँव का एक ऐसा लड़का था, उसका यौवन जब आया, तब वसन्त की तरह मुसकरा गया और कोकिल कूक उठे; सावन की तरह बरस गया और मोर नाच उठे। जगिया को चाहनेवाले कितने ही अवारे लड़के थे लेकिन, अभी सब लोग हथेली पर दिल रखे हुए तड़प ही रहे थे, किसीकी यह हिम्मत नहीं हुई थी कि जगिया को कभी एकान्त में रोके या छेड़े।

प्रकट या अप्रकट रूप से सभी का यह विश्वास बन गया था कि जगिया के रूप ने गाँव भर के लड़कों पर जादू सा कर दिया है। इतना ही नहीं, कुछ लोग तो ऐसे भी थे, जो जगिया के सभी प्रेमियों के नाम एक दो कर उँगलियों पर गिना सकते। बचा था तो एक ही और वह था और कोई नहीं, हमारा ही एक साथी “गोलो”। गोलो की हम लोग उन व्यक्तियों में गिनता करते थे, जिनके बारे में ऐसा समझा जाता है कि औरतों के चलाए हुए ब्रह्मास्त्र भी उसपर निष्फल हो जाते हैं। कम से कम हम लोगों की तो यही धारणा थी।

एक दिन बिल्दू हाँफता हुआ मेरे पास आया। बिल्दू हमारी पार्टी का सब से कम उम्र का लड़का है और इसलिये वह सब से घुला-मिला रहता है। जगिया का कोई गिदता भी उससे है और इसलिये वह सब का प्यारा है।

उसको जब मैंने अपनी ओर लम्बे-लम्बे डेग भरते हुए आते देखा, तब मुझे भी कुछ कम उत्सुकता नहीं हुई। “क्यों, आखिर बात क्या है?” मैंने पूछा।

“गोलो कह रहा था कि” वह रंज से बोला—“तुम जगिया को फुसजा दो तो दस रुपये!”

“दूँगा?” आश्चर्य से चकित होकर मैं बाच ही में टपक पड़ा—“सच कहो यही कहा था न उसने?”

“हाँ, हाँ। और उसने यह भी कहा था कि किसीको कहना मत। आज चार दिनों से रोज वह मिठाई खिलाता है। अब समझा कि उसके दिल का क्या राज है?”

“हाँ? यह बात भी है!” मैं बोला—“अच्छा, तो तुमने क्या जवाब दिया?”

“जवाब?” बिल्दू ने कहा—“जवाब क्या देता? एक चपत लगा कर भाग आया। जगिया मेरी बहन है—तुम्हीं कहो, क्या मैं इतना बेवकूफ हूँ? और उसने चरित्र का सम्पूर्ण उज्ज्वलता लेकर मेरी ओर देखा—“क्या मैंने बुरा किया?”

“हाँ।” मैंने जरा गम्भीर होकर उससे कहा—“तुमने सचमुच बुरा किया!”

“क्या कह रहे हो तुम?”

“बिल्कुल सच कह रहा हूँ तुम से”

और किसीके मुँह से अगर यह बात निकली होती, तो बिल्दू इतना सीधा आदमी था कि गोलो की तरह उसपर गुस्सा कर बैठता। मगर, शायद मेरी वह कद्र करता था। इसलिये उसने विस्मय से मुँह

फाड़ लिया—

“क्या—आ—आ ?”

“यही कि उसके पास फिर जाओ और कहो कि हमसे कुसूर हो गया। तुम्हारी बात मंजूर है। लाओ, दस रुपये दो।”

“लेकिन.....जगिया जो मुझपर विगड़ेगी, तो ”

“गोलों से रुपये लेकर तुम जगिया से कहने के लिये थोड़े ही बाध्य हो जाओगे ? अरे, रुपये ले लो और बस, जैसा चलता है, चलने दो। पूछे, तो कहो कि कोशिश भर हम करेंगे। उससे मिजा देने का पक्का वादा नहीं कर सकते ?”

“उसके बाद ?”

“उसके बाद का प्रोग्राम हम फिर बतायेंगे” मैंने हुकूमत की आवाज में कहा—“पहले रुपये तो लाओ।”

क्या यह भी कहने की जरूरत है कि बिल्टू ने वापिसी डाक से रुपये लाकर मेरे हाथों में धर दिये ? चूँकि वह मेरी पहनी कमाई था इसलिये इस बात की मुझे कम खुशी नहीं हुई।

(२)

दो चार दिनों तक लगातार उन रुपयों से गुलछरें उड़ाये गये, चार-दोस्तों को दावतें दी गईं—पानों की तरह बहा दिया गया। पेड़े, पान और बीड़ियाँ, ये ही तीन चीजें हमारे जशन की शृङ्गार थीं। गोलो भी हमारी पार्टी में शरीक होता, मगर उसे यह पता नहीं लगता कि आखिर एक ही दिन में इतना ढेर-सा रुपया कहाँ से आ गया, जा ये दावतों पर दावतें हो रही हैं ?

खैर, इधर हम जागों का लगातार उत्सव और उधर गोलो का तकाजे पर तकाजा। शुरू में जब बिल्टू उसकी बेकरारियों को मेरे आगे ले आया, तब मैं बेतरह खीझ उठा। परन्तु, एक दिन जब दोनों हाथ खाली हो गये, तब मैंने बिल्टू को बुलाकर पूछा—“क्यों, रे ! अब क्या कहता है वह ?”

“कहता है कि” बिल्लू बोला—“जगिया को लाओ या रुपये वापिस करो।”

“अच्छा ?” मैंने कहा - “उससे बांलो कि जगिया दस रुपये पर राजी नहीं होती।”

“तो कितना और कहा जाय ?” “कम से कम २५) और ऊपर करो, तब काम चले !”

“लेकिन, यह तो गोला के लिये बहुत बड़ी रकम है !”

“प्रेम के सौदे में बड़ा या छोटी रकम-जैसी कोई चाज ही नहीं है।” मैंने कहा—“वह जरूर दे देगा, सब नहीं तो, जो ही दे, ले लेना।”

मिला। ऊपर से नीचे तक रंगान बना हुआ था। चाहा कि मेरा दृष्टि बचा कर निकल भागे, त्यों-ही मैंने टोक दिया—“अरे, ओ गोलो।”

धूम कर ताका—“अरे, तुम हो।”

“नहीं तो !” मैंने मुस्कराते हुए कहा ‘सुना है, आज कल तुम्हारे पैर जमीन पर नहीं पड़ते !’

“मजाक मत करो।” गोला ने आजिज-सा होते हुए कहा—“जो कुछ कहना हो जल्द कहा।”

‘बाहरे, जल्द कहा ! सुनो भा तो क्या कोई चिड़िया-चिड़िया ?”

“राम का नाम लो !” गोला बोला “मुझसे और चिड़ियों से मतलब ? मैं शाकाहारी हूँ।”

“या चिड़िया जाल में आती ही नहीं ?”

“मजाल है ?” उसने अपने स्वर में बलात् दृढ़ता लाकर कहा --- “आखिर, तुम समझते क्या हो ? अभी मैं चाहूँ, तो एक क्या सैकड़ों चिड़ियों को सिर्फ एक इशारे पर बन्हा सकता हूँ। मगर, सच तो यह है कि मैं ऐसा चाहता ही नहीं !”

“लेकिन, धर्मावतार ! अगर मैं साबित कर सकूँ, तो ?”

“तो, . . . तो क्या ? यदि तुम मुझे बुला कर इस तरह जर्जीज ही करना चाहते हो, तो शौक से करो । लेकिन, यह भलमनसाहत से बाहर की बात है ।”

मैंने देखा, मामला अब बिगड़ा चाहता है । चट बोला—“वाह भाई, नाराज हो गये ? जरा-सी बात तिल का ताड़ बनाते जा रहे हो ! क्या खूब ।”

और गोला तपाये हुए लोहों की तरह नरम पड़ गया । मुँह जो मुरझाये हुए फूल की तरह कुम्हला गया था, फिर खिल उठा—“जाने दो । हाँ, यह कहाँ कि कोई जरूरी बात तो नहीं कहनी है ?”

“नहीं ।” मैं बोला—“तुम जा सकते हो ।” और जब वह दूर चला गया, तब मेरे मुँह से निकल पड़ा—“बगुला-भगत कही का !”

(३)

देहात में, जहाँ पैसे-पैसे का कीमत रूपयों में आँका जाता है, वहाँ २५) की रकम वास्तव में थोड़ी नहीं होती । मगर, किया क्या जाय ? मजबूरी थी ।

मैंने सोचा था, जब तक गाय दूध देता है, तब तक उसकी लातें भा सह ली जायें । फिर तो उसे किसी तरह टरका भी देना कोई कठिन काम नहीं ।

परन्तु, हम तो मान लेते हैं - कमजिया माने तब तो ?

और एक दिन जब गोला ने बिल्टू का गर्दन पकड़ कर बेरहमी से झुलाया और यह धमकी दी कि जान ले लेंगे, नहीं तो फौरन रुपये वापिस करो—बाज आये तुम्हारे आज और कल से, तो गराब बिल्टू ने मेरे पैर छू लिये—“भैया, अब तुम्हीं बचाओ, तो मेरे प्राण बचे !”

“बबड़ाभो मत बिल्टू !” मैंने कहा - “गोलो को जगिया ही तो चाहिये । या और कुछ ?”

“यह असम्भव है । रुपये ही वापिस कर दो ।”

“रुपये तो अब वापिस हां नहीं सकते ! मिल सकती है, तां जगिया ही ।”

बिल्लू को जैसे मधुमक्खी ने डँस लिया । तुतजाता हुआ बोला—
“तो तुम्हारे कहने का मतलब यही न है कि मुझे जगिया के हाथों मरम्मत कराओ ।”

“नहीं जा । वह काम मैं खुद करूँगा । तुम गोला से सिर्फ इतना हां जाकर कह दो कि परसों—परसों इतवार है न ? शाम को एक घड़ा रात बीते नेती काका के खेत में जिसमें अलुआ है, जगिया मिल जायगी । ... समझे न ?”

बिल्लू चौंक उठा । बोला—“परंतु, तुम यह काम कर सकांगे ? बिल्ली के गले में घंटा ...”

जोर देकर मैंने कहा—“मैं बाँधूँगा । तुम निश्चिन्त रहो । जाओ, अपना काम करो ।”

(४)

मुझे मालूम नहीं था कि परसों न सिर्फ इतवार ही है, बल्कि पूर्णिमा भी ।

और, हर पूर्णिमा को किसी न किसीके घर हमारा पाटी का माहवारी बैठक हुआ करती था, जहाँ हमलोग आपस में मिन कर गप्पें उड़ाते, या बहस का बाजार गरम करते ।

और ठीक वक्त पर परसों आ पहुँचा शाम भी हुई । पूजा का चाँद भा आसमान में निकल आया । मैंने नौकर को बुला कर कहा—
“देखो, सभी मेम्बरों को फौरन् जाकर यह सूचित कर दो कि आज गोला के घर पर मीटिंग है । जितने लोगवाग हों, जल्द आ जायँ !”
और मैं चल पड़ा नेती काका के खेत की तरफ ।

नेती काका के जिस खेत में जगिया के पहुँचने का बात थी, वह जगिया के घर से थोड़ी-सी दूर भी नहीं था और जगिया का वहाँ आ जाना इतनी हां आसान बात थी, जितनी किसी बछड़े के लिये बधान

की एक दौर लगा लेना !

बैशाख महीने की धुँधली चाँदनी में मैंने साफ देखा, कोई व्यक्ति आहिस्ते-आहिस्ते कदम बढ़ाता हुआ नेती काका के खेत की ओर चला जा रहा है। आशा के अनुकूल ही पहचानते देर न लगी कि यह तो गोला है। पीछे से आइट पाते ही उसने तेजी से आगे बढ़ जाना चाहा। लेकिन, मेरी आवाज ने जरा देर के लिये उसे चोर बना दिया।

“नदी के किनारे मेरी जो उड़द है, उसपार के ग्वाले लोग भैंस से चरा लेते हैं। आज सोचा, क्यों न उनकी खोज-खबर ली जाय !” तपाक-से वह बोला।

गोलो का कहना, यद्यपि सच था, फिर भी इसमें कितना झूठा था, यह मैं ही जानता था।

“आज तुम्हारे घर पर मीटिङ्ग है, और तुम इस तरह गायब हुए जा रहे हो, जैसे गधे के सिर से सींग !”

“आज तो भाई, मैं लाचार हूँ।” यह कह कर उसने जेब से रुमाल निकाली और हवा में खुशबू की एक जहर-सी जगा दी। अभी-अभी के सँवारे हुए बाल, बनाया हुआ चेहरा और भाई हुई तबीयत, मैंने जो देखा, तो आप ही फड़क उठा—

“कातिल की तरह आज जो नया रंग लाये हुए हो ! ..”

“माफ करो।” आगे सुनने का न उसमें धैर्य था और न फुसंत।

कन्ना काट कर चला गया—“माफ करो। मुझे जाने दो।” जाने को तो गोलो चला गया, लेकिन खतरे का डर उसके दिल में जो समाया, सो दूर न हुआ। दस-पाँच कदम आगे बढ़ कर वह फिर झौटा और मुभसे बोला—“आखिर मल्लुक मौत जो इस तरह तुम मेरे पीछे पड़े हो, उसका मतलब क्या है ?”

मैंने उसके कान के बिल्कुल नजदीक सट कर कहा—“जगिया को इधर आते देखा है....”

इठात् वह चिला उठता। लेकिन, शायद उसने अपने को बहुत

रोका—“ऊँह ! क्या फिजूल बातें करते हो ?” और तब उसने काँपते हुए स्वर से कहा—“घर पर चलो । मीटिंग करो ! लोगों को बैठाओ । मैं अभी आया ।”

और जब तक मैं वहाँ से पीछे नहीं हटा, तब तक वह वहाँ खड़ा रहा । लेकिन, मैं जाता भी तो, कहाँ ? पैर भारी हो रहे थे । रास्ते के किनारे जंगल बेर की एक झाड़ी थी, मैं उसीकी आड़ में दबक रहा । और, गोलो की हर एक हरकत को गौर से देखने और समझने की कोशिश करने लगा ।

इतने में सचमुच—सचमुच नेती काका के खेत में, ठीक बीचो-बीच, एक उजली-सी, बिल्कुल सुफेद, मानों चाँदनी की साड़ी पहने, दूध-से धुली मूर्ति एकाएक आकर खड़ी हो गई और उसे देखते ही गोलो एकाएक ऐसे झपटा, जैसे सामने शिकार को पाकर बहुत देर से इन्तजार में बैठा हुआ बाघ ।

किसीके तन पर एक गज भी कपड़ा न हो और उसके सामने अगर आकाश फट जाय, तो उसकी जैसी हालत हो जाती है, ठीक वही हालत जगिया को देख कर गोलो की हुई । सब्र का बाँध टूटा, जहरों का एक प्रबल ज्वार आया और उसमें जो गोलो का दिल बाँसों उछला, तो उसने जगिया को, थर-थर काँपते हुए अपने दोनों भुजपाशों में बाँध कर ही दम लिया ।

लेकिन, यह क्या ?

जगिया के शरीर का एक भरपूर स्पर्श होते ही वह चीख कर चार कदम पीछे हटा—अरे बाप रे ! मरा रे !”

मुझे लगा, जैसे वह गिरा और फिर फुर्ती से उठ कर कराहता हुआ एक ओर भागा । भागा, सो कहाँ गया, ठीक-ठीक मुझे मालूम नहीं हो सका ।

(५)

गोलो के घर पर मीटिंग हो रही थी । बिल्हू और गोलो का छोड़

कर हमारी पार्टी के और सभी मेम्बर मौजूद थे। एक साहब किसी कवि की इन पंक्तियों का भाव समझा रहे थे:—“हे गुलाब ! मैं तुम्हारे वाग का बुलबुल हूँ। पराग भौरों को दो। मुझे तो कांटे ही चाहिये। पराग की गन्ध तो कुछ ही मिनटों में भूल जाऊँगा। परन्तु, ये कांटे तो, जब तक कसक रहेगी, याद रहेंगे। इसलिये ”

इतने में बिल्टू को लिये हुए गोलों घर पहुँचा, जहलुहान कपड़े जितने सुफेद थे, ये लाल-लाल धब्बे भी उतने ही खुल रहे थे।

हमारा पार्टी गोलों को रोकता ही रह गई—“अरे, सुनो भा तो यार ! ...अरे दोस्त....ओ राजा ! “मगर, कौन सुनता है ? पहले दीन, .. तब तो दुनिया ?

सुना सिर्फ बिल्टू ने। गोलों के अन्दर चले जाने पर वह मुझसे बोला—“तुमने तो गजब कर दिया। कह रहा था, मुझे चंगा तो होने दो, फिर उसके पेट में भाला न भोंक दिया, तो मेरे नाम से कुत्ता पोसना।”

“हुआ क्या ?” शोर से कमरा गूँजने लगा—“क्या हुआ ?”

और जब मैंने अपनी शाम की गश्ती का बयान दिया, तब तो हँसते-हँसते सब के पेट में बल पड़ने लगे। और समूची मजलिस ने एक साथ ही प्रश्न करना शुरू कर दिया—“क्या वह जगिया ही थी ?”

“नहीं। नहीं। नहीं।”

“तब ? तब ? तब ?”

“अरे, भाई ! नेता काका का खेत तो तुम लोगों ने भी देखा है। बताओ तो, उसके ठीक बीचों-बीच क्या है ?

किसाने देखा ही नहीं, किसीको याद ही नहीं, किसीको मालूम ही नहीं। यही तो आँखें हैं।

बिल्टू बोला—“भैया ! हम समझ गये !”

“क्या ?”

“वहाँ जो चिड़ियों का उड़ाने का पुतला । क्यों, सच है न ?

‘बस, बस । मेरे लाल बुझकड़ दांस्त उसीको बढ़िया कपड़े-लत्ते से सज दिया गया और अन्दर से झड़बेर की पाँच छै कंटीला डालें कुछ इस तरह से बाँध दी गई, कि एकबार तो आँखवालों को भी धोखा हो सकता था । फिर गोलो तो प्रेमी ही ठहरा । प्रेमी तो जमाने से अँधे होते आये हैं । जिस वक्त मैं गोलो को इधर बाँतों में उलझाये हुए था, ठीक उसी वक्त उधर यह काम भी हा रहा था ।”

“और वह कौन था ?” एक ने फिर सवाल किया ।

‘वह और कोई नहीं !” मैंने बिल्टू का पाठ का शाबासी से ठोकते हुए कहा “यहाँ जो आपके सामने सिर झुकाये हुए बैठे हैं, भोले भाले-से इस नाटक के सूत्रधार है ।” और सब ने देखा, बिल्टू सचमुच ही दोनों हाथों से मुँह को छिपाए खी-खी” कर हँस रहा था ।

‘खाली मेरी पाठ का ढाल ही पीटोगे या कुछ इनाम-तिनाम भी दोगे ?”

“हाँ, हाँ ! यह लो ।” यह कह कर मैंने उसकी उँगली में एक खूबसूरत सोने की अँगूठी पहना दी—“गोलो के चले जाने पर, खास तुम्हारे ही वास्ते, बड़ी मेहनत से इसे मैंने टार्च की रोशनी में उस पुनापे के नीचे से ढूँढ़ निकाला था । यह लो ।”

कल्पिता

(१)

किंग एडवर्ड अस्पताल,

लखनऊ

ता० ४-५-३६ ।

प्रिय शशि,

कल आपरेशन हो गया । डाक्टर ने मुझे देख कर कहा था, क्लोरोफार्म लेना पड़ेगा । लेकिन, मैंने साफ इनकार कर दिया । आखिर मेरी आँखों के सामने सर्जन ने मेरी जाँघ में चाकू जगाया । और मैंने सब बर्दाश्त किया । तकलीफ तो हृद से ज्यादा हुई; फिर भी, मेरी हिम्मत की सभी तारीफ करते थे ।

सेर-भर खून से कम नहीं गिरा होगा । बहुत कमजोर हो गया हूँ । बदन में जरा भी ताकत नहीं मालूम पड़ती । डाक्टर का सलाह है कि यों-ही इक्कीस दिनों तक मैं चारपाई पर चित्त पड़ा रहूँ । तनिक हिल-डुल भी नहीं सकता ।

पड़े-पड़े मन नहीं लगता है, तो अखबार के पन्ने उलटने लगता हूँ। क्या करूँ.. ? जाचारा है। इस वक्त अगर तुम होते, तो जरा आराम से दिन कटते। लेकिन, तुम तो हो जापता। यह चिट्ठा भी बड़े कष्ट से लिख रहा हूँ। सांचो तो सही, इक्कीस दिन !.. ये लम्बे-लम्बे पूरे ही तीन सप्ताह !.. एक ही हालत में बिस्तर पर पड़े रहना !... क्या तुम भा नहीं सकते। कौन-सा ऐसा काम है, जो घर पर पड़े हो ? अरे, तनिक दया कर के आओ भाई ! मैं मुसीबत में पड़ा हूँ !... कम-से-कम थोड़ा मन-बहलाव ही हो जायगा !.. तो बांजो आभोगे न ?... तुम्हें उसीका कसम है, जिसको तुम दुनिया में सबसे ज्यादा प्यार करते हो। बहाना मत करो। आ जाओ। तुम्हें देख कर मुझे बड़ा सन्तोष होगा।

—तुम्हारा, विधु।

भावना-भवन,

दरियापुर, इलाहाबाद।

ता० ६-५-८६

प्रिय विधु,

तुम्हें बीमार जान कर बहुत दुःख हुआ। लेकिन साथ ही यह सुन कर खुशी भी हुई कि आपरेशन सफल रहा। अब किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। भगवान् चाहेगा, तो जल्द ही चंगे हो जाओगे।

तुम ने मुझे बुलाया है। तुम नहीं भां बुलाते, तो मेरा यह फर्ज था कि इस वक्त मैं सौ काम छोड़ कर तुम्हारे नजदीक खड़ा होता। किन्तु, भाई ! इधर भी वैसी-मुसीबत है ! मेरी बड़ा भाभी को “प्लूरिसी” का सन्देह हो गया है। उन्हीं को लेकर, इस देहात में पड़ा हूँ।

घर आया था, मैं जरा दिज बहलाने और फंस गया झंझट में ! घर पर उस वक्त कोई मौजूद नहीं था। बड़े भैया नौकरी से छुट्टी लेकर भा नहीं सकते थे। भाभी का भार मुझे ही संभालना पड़ा।

विधु, सचमुच मैं बहुत दुखी हूँ। इस वक्त तुम्हें मेरी जरूरत थी। मगर, मैं ऐसा फँस गया हूँ कि एक दिन के लिए भी फुर्सत पाना मुश्किल है। भाभी का दिल घबराने लगता है। और, तब मेरी विवशता मुझे मजबूर कर देती है। तुम्हीं ख्याल करो, इन्हें छोड़ कर मैं कैसे आऊँ ?

हाँ, एक बात क्यों न हो, जिस काम के लिए तुम मुझे बुला रहे हो, अगर वह मैं यहीं से कर दूँ ! तुम्हें मन-बहलाव ही तो चाहिए ? बीमारी की हालत में इस से बढ़ कर और हो भी क्या सकता है ? मैं तुम्हारे निकट रह कर भी तो यही करता कि जिस में तुम खुश रहो, हँसते रहो और अपनी तकलाफ को भुलाये रहो, वही करता, उतना काम मैं यहाँ रह कर कर भी कर सकता हूँ। तुम बराबर पत्र लिखते रहो। मैं कोशिश करूँगा कि तुम्हें अस्पताल का नीरस जीवन बिलकुल न अखरे !

—तुम्हारा, शशि।

(२)

किंग एडवर्ड अस्पताल

लखनऊ।

ता० ८-५-३६।

प्रिय शशि,

तुम्हारे खत ने मुझे कितनी तसल्ली दी, क्या बताऊँ ! इस वक्त, जब मैं सान्त्वना के दो कोमल-शीतल शब्दों के लिए तरस रहा हूँ, तुम्हारा पत्र आकर अमृत का काम करता है। इस के लिए तुम्हें जितना धन्यवाद दूँ, थोड़ा है।

हाँ अस्पताल का जीवन बिलकुल नीरस है। दिन-भर रोगियों का चिल्लाहट, कराह...हाहाकार, जैसे सारी दुनिया मरीज ही हो। हँसी-खुशी नाम की कोई चीज ही यहाँ नहीं ! चारों तरफ रुदन,....

डाक्टर आता है। किसी की जीभ देखता है। किसी का पेट और किसी की छाती पर स्टेथेस्कॉप रख कर उस के दिल की धड़कन सुनता है ! रोगी पुकारता है - 'डाक्टर बाबू !' तो, डाक्टर साहब मुँकला कर जवाब देता है—'चुप रहो !' "

यह दृश्य देखते देखते मैं जब गया हूँ। युद्ध में घायल सिपाहियों की कैसी हालत होगी मैं इसी से अन्दाज लगा सका हूँ ! कहीं भी सहानुभूति नहीं !

फिर भी, जिस के पास पैसे हैं वे स्पेशल वाइनों में मौज कर रहे हैं। शेष सर्भी जानवर ही है।

तुम नहीं आ सके। तकलीफ तो जरूर हुई; परन्तु फिर भार्मी का ख्याल आया ! जी मसोस कर रह गया !

यहाँ तो, समझो जीवन में कोई रस ही नहीं है

वह इस मरुभूमि में आ कर खा गया। कर्मा-कर्मा

हो जाते हैं। अस्पताल का भाषा में उन्हें नसे

उजला-सा वेश, खट-खट करता हुई इधर-से

करता है और रोगियों को अजीब हैदरत

किसी को छू दिया, तो, वह अपने

साहिबा, हम, " और रोगी

साहिबा चलता नजर आती

खैर, नहीं आगे

भूकना। मैं तुम्हारे

जिन्दगी तुम्हारे

प्रिय बिधु,

यह घोर ५

न आजीशान मकान, न होटल, न सिनेमा...कुछ भी नहीं !....फिर भी, यहाँ एक सादगी है, जो तुम्हारे शहर में भी नसाब नहीं ।

यहाँ मेरे पिता की थोड़ा-सी जमींदारी भी है । और हमारे पूर्वजों का बनाया एक पक्का मकान भी । मकान के पास से ही एक छोटा-सी नदी बहती है । छोटा-सा गाँव है । कुल सौ घर है । जो प्रायः सभी अपने ही जमींदारी में पड़ते हैं ।

मैं यहाँ पहली बार ही आया हूँ । फिर भी मन खूब जगता है । जिस वक्त भावां की तवायत ठाक रहती है, मैं उन से पूछ कर खेतों की तरफ निकल पड़ता हूँ । कोसों तक हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है । खुली साफ हवा, ऊपर नीला आसमान, चारों तरफ नंगे खेत और मैदान, घूमते-घूमते थक-सा जाता हूँ । और, तब एक विचित्र आनन्द लिए घर बौटता हूँ ।

एक नौकर एक रसोइया, भाभी और मैं—कुल चार ही आदमी हैं ।

गाँव के स्वस्थ वातावरण में पत्नी हुई बढ़कियाँ । देखने में काली,....कुछ भरी भा । परन्तु, कितनी प्रसन्न और कितनी तन्दुरुस्त ! इन्हें देख कर तो भाई, सच कहता हूँ, मुझे शहर की छोकड़ियों की भड़क-भड़क फाँकी जान पड़ती है । तुम कहोगे, मैं कैसा गँवार हूँ ? मगर,.... मैं कहता हूँ पते की बात !

जब मैं घूमने निकलता हूँ तो वे खेतों में काम करता दिखाई देती हैं । मेरी भड़कीली पोशाक, अजीब फैशन, नागरिक रहन-सहन और जापरवाह तबीअत पर वे गाँव का बालिकाएँ कौतूहल-पूर्ण दृष्टि से देखती हैं । मैं उन लोगों के बीच अजनबी-सा जगता हूँ ।

४

—तुम्हारा, शशि ।

पुनश्च—हाँ, एक जरूरी बात तो भूल ही गया । मेरे मकान के पास ही यू० पी० के कोई सज्जन सपरिवार आकर ठहरे हैं । अभी विशेष परिचय नहीं हुआ है । लेकिन, उम्मीद है कल तक हम लोग

एक-दूसरे के निकट आ जायेंगे ।

—तुम्हारा, शशि ।

(३)

किंग एडवर्ड अस्पताल,

लखनऊ ।

ता० १२-५-३६ ।

प्रिय शशि,

दो दिनों के बाद तुम्हारा एक खत मिलता है । क्या कोई ऐसी तरकीब नहीं है, जिस से रोज तुम्हारे दो-तीन खत मुझे मिल जाया करें ! इतने से सन्तोष नहीं होता । जीवन-भर के प्यासे को एक बूँद जल से क्या होता है ?

फिर भी, मैं तुम्हारे पत्र का बड़े चाव से पढ़ता हूँ । एक बार जब तृप्ति नहीं होता, तो बारम्बार पढ़ता हूँ । सचमुच, इस से मेरा दुःख बहुत कम हो जाता है । तुम्हारा मधुर पंक्तियाँ मुझे आगे बढ़ाने में सहायक हाता हैं । नहीं, तां, सच पछो, मैं कब का न दम घुट कर मर गया होता ।

तुम्हारा गाँव का वे लड़कियाँ मुझे विस्मित कर रही हैं । मेरे हृदय में कौतुक होता है । काश, मेरे पर हाँते और मैं उड़ कर तुम्हारे पास पहुँच गया होता ।

और, भाई ! वह परिवार कान है, जो तुम्हारे पास हाँ आकर बस गया है । हो तुम खुशनसीब । जहाँ रहते हो, मन के अनुकूल कोई सामान मिल ही जाता है । एक मैं हूँ, जो अस्पताल में पड़ा-पड़ा मिनट-मिनट का हिसाब ले रहा हूँ और एक तुम हो जो.....

उत्तर शीघ्र दो । मैं बहुत बेचैन हूँ ।

—तुम्हारा, विधु ।

भावना-भवन,
दरियापुर, इलाहाबाद ।
ता० १४-५-३६ ।

प्रिय विधु !

बामारी का हालत में इतना बेचैनी ठाँक नहीं । आराम से पड़े रहो । जो बातें होंगी, मैं लिखूंगा । धैर्य खाने की क्या जरूरत है ?

हाँ, तुम जानते हो, उस नवागन्तुक परिवार के विषय में । अभी तक मैं इतना ही जान पाया हूँ कि उस परिवार में एक लड़की रहती है । देखने में बड़ी अच्छी मालूम पड़ती है । उमर भी अधिक नहीं होगी... यहाँ, १५-१६ साल की । मेरे पढ़ने के कमरे से उसका घर साफ दिखलाई पड़ता है । अक्सर मैं उसे बाहर ही देखता हूँ ।

सुबह स्नान कर आती है, तो, बालों को फैला कर मजे में कुसा पर बैठ जाती है । कभी बगोचे में टहलती, कभी तितालियों के पीछे दौड़ता और कभी गुनगुनाने लगती है । अपनी एक कमजोरी बताऊँ । मैं चोरी से, उसका तमाम हरकत देखता हूँ । बड़ा भला लगता है, जी को ।

शायद अभी तक वह कुमारी ही है ।

माँ की तबीयत इधर अच्छी रहती है । यदि उनके स्वास्थ्य की ऐसी ही प्रगति रहा, तो कुछ ही दिनों में मुझे घर लौट जाना पड़ेगा ।

तुम तो अपनी हालत कुछ लिखते ही नहीं । सिर्फ, मेरी बातें सुनना पसन्द करते हो । खैर, तुम्हारी खुशी, ... तुम इसीमें प्रसन्न रहो, तो, मुझे यह भी मंजूर है !

लक्षण ऐसे हैं कि अब हमलोग बहुत जल्द ही घुल-मिल जायेंगे । वे भी तो इस देशत में अपने को अकेला ही महसूस करते हैं । फिर, अपनी सांसाइटी का भी कोई आदमी चाहिए न ? बिना इसके आज का सभ्य मानव कैसे जिन्दा रह सकता है ?

आज ही तो सुबह की बात है । उनका नौकर आया था । बुला

कर मुझे ले गया। मुझे देखते ही वह लड़की चमक कर अन्दर भाग गई। बर्गाचे में, एक अंधेड़ उम्र का व्यक्ति, जो सम्भवतः उसका पिता था, मिला। उठ कर मेरा स्वागत किया—“आइये !”

“आप ही ने मुझे याद किया था ?”

“हाँ। आप यहाँ कितने दिनों से हैं ?”

“यहाँ, लगभग पन्द्रह दिनों से।”

“सुना, यह आप हाँ की जमींदार है।”

“जाँ, है तो। कहिये, कौन-सा सेवा करूँ ?”

“अभा नहीं” वह बोला, “जरूरत होगा तो आप अवसर देंगे न ?”

“बेशक।” और, मैं उठ कर जाने लगा—“अब इजाजत दीजिए !”

“अरे, पान-वान ता खा लाजिए !”

“जी, मैं तो शौक नहीं करता।... मगर, जब आप कहते हैं, तो इनकार भी नहीं। ”

नौकर तश्तरी में पान ले आया। आशा थी, नहीं, विश्वास-सा था कि वह आयगी। परन्तु, वह आई नहीं। फिर भी, मेरा आँखों ने देख ही लिया कि वह खिड़की से मेरा पान खाना देख रही है !....और देख रही है एक उत्कण्ठा से।

—तुम्हारा, शशि।

(४)

किंग एडवर्ड अस्पताल,

लखनऊ।

ता० १६-५-३६।

प्रिय शशि,

भला उस लड़की का नाम तो तुमने बतलाया ही नहीं..... मुझे तुम्हारे भाग्य पर रश्क हो रहा है। दिन-भर वह मेरे दिमाग में चक्कर काटती रही। मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे वह तुम से मुहब्बत

करती है। प्रथम दृष्टि में ही प्रेम इसी को कहते हैं। हाँ, अब यह तो बताओ कि इस के बाद क्या गुल स्निजा?... फिर उससे मुजाकात हुई कि नहीं?

न जाने, क्यों मैं भी तुम्हारी ही तरह उस लड़की को प्यार करने लगा हूँ।

— तुम्हारा, विधु।

भावना-भवन,
दरियापुर, इलाहाबाद
ता० १८-५-३६।

प्रिय विधु,

आखिर, तुम भी उस लड़की को प्यार करने ही लगे! मगर जब यह जान पाओ कि वह भी तुम्हें चाहती है, तब कैसा हो?

सुनो, उस का नाम है कल्पिता। यह बात भाभी से मालूम हुई। कल वह उन से मिलने आई थी। मैं कहीं बाहर गया था। घर बौट कर आया, तो, देखा कुमारी कल्पिता देवी यहीं विराज मान हैं। मैं विस्मित भी हुआ, प्रसन्न भी। मुझे देख कर वह पलंग से उठने लगी कि भाभी ने बाँह पकड़ ली—‘अरे, बैठो भी! यह गँवारूपन रहने दो’”

संकोच और संशय से भरी, वह ज्यों-की-त्यों बैठ गई। मैंने ख्याल किया, अब यहाँ रहना ठीक नहीं। दो स्त्रियों के बीच में तीसरे पुरुष का और, सिर्फ भाभी ही रहतीं, तो खैर... मगर, यह अनजान-अपरिचित लड़की मैं वहाँ से जाने लगा।

“शशि!” भाभी ने हँस कर कहा—“पुरुष इतने संकोची तो नहीं होते!” कल्पिता होठों में मुस्कराई।

“कुर्सी खींच लो, बैठो।”

“किन्तु...” मैं कुछ कहना ही चाहता था कि भाभी बोल डठी—“मैं समझी!..... कल्पिता ही तो? परन्तु, वह तो अब अपनी ही

है क्यों, बहन ?”

कल्पिता ने उसका उत्तर एक गुलाब सुस्कान में दे दिया ।

घंटे-भर तक वह वहां बैठी रही । धीरे-धीरे मेरा संकोच भी दूर होने लगा । कल्पिता भी खुलने लगी । जहाँ, हम दोनों असहाय एक दूसरे का मुँह निहारने लगते, वहाँ भाभी सहारा दे देती ।

इसके बाद जब वह जाने लगी तब भाभी ने कहा—“इसे घर तक पहुँचा दो, शशि !”

मैं अकेली भी जा सकती हूँ ?

‘भर्त्ता आदमी, शशि जायगा, तो तुम्हें आपत्ति ही क्या है ?’

वह झंपने लगी ।

थोड़ा दूर हा तो घर था । मैं कल्पिता को उसके हाते में पहुँचाकर लौट आया । रास्ते में कोई नई बात नहीं हुई ।

- तुम्हारा शशि ।

किंग एडवर्ड अस्पताल,

लखनऊ ।

ता० २०-५-३६ ।

प्रिय शशि,

तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि कल्पिता मुझे चाहती है ? ... जहाँ तुम्हारे जैसा सुन्दर सुशाल, गुणवान, ... वहाँ मैं ... मजाक बंधो करते हो ? ... हाँ, तब क्या हुआ ? मेरा कौतूहल सीमोलंघन कर रहा है । जल्द जवाब दो । रोमांस के पीछे कहीं मुझे मत भूल जाना । नहीं तो, ... मैं मर जाऊँगा !

तुम्हारा, विधु ।

भावना-भवन,

दरियापुर, इलाहाबाद ।

ता० २०-५-३६ ।

प्रिय विधु ।

अब कल्पिता प्रायः प्रतिदिन मेरे मकान पर आती है । कम-से-कम

दिन में एक बार तो जरूर ही। बहाना तो भाभी से मिलने का रहता है। मगर, मन में कोई दूसरी ही बात रहती है उसे मैं ही जानता हूँ, ...या, भाभी

कभी शाम को, ...सुबह में भी मेरे साथ टहलने निकल पड़ती है। और, हम दूर-दूर निकल जाते हैं। कल्पिता को देहाती जीवन उतना भाता नहीं। टेढ़ीमेढ़ी पगड़ण्डियों पर चलना उसे अच्छा नहीं लगता। उसे चाहिये, स्टैनले-रोड जैसा लम्बी-चौड़ी सड़क राजपथ ! ऊँची पड़ो के जूते पहन, जब वह गाँव में घूमता है तो ग्रामीण स्त्रियाँ दांतों-तले उंगली दबा लेती हैं—“अरे. बाप रे !”

और. हम दोनों खिक्खिला पड़ते हैं।

अब कहता हूँ, विष्णु ! तुम्हारी हा तरफ वह भी बड़ा भावुक है ! साहित्य से उसे भी प्रेम है और, देखता हूँ, वह भी जबतब पेन्सिल से कुछ लिखने पढ़ने की कोशिश करता रहत

कल सुबह मैं उसके घर गया था। वह अपने कमरे में बैठी पढ़ रहा था। उसके हाथ में एक मासिक-पत्रिका थी। प्रथम-पृष्ठ पर ही तुम्हारा कविता छपी थी ! कल्पिता उसीको धीरे-धीरे गुनगुना रहा थी। मेरी आइट सुनी तो चुप हो गई। मुसकराई और कहा—
“वन्दे .”

“बड़ा सुन्दर रचना है !” वह बोला. ‘आप ने उसे देखा है।’

“देखा है और सुना भी है।”

“कब ?”

“अब से बहुत पहले !”

“नहीं, साइब ! वह इसी अग्रज के अंक में छपा है !”

“हां. मैं भी तो यहाँ कहता हूँ।”

“जिसका शीर्षक है, ‘किसांमे’।”

“वह !”

“क्या आप कवि से व्यक्तिगत रूप में परिचित हैं ?”

“अवश्य, वह मेरे घनिष्ठ मित्र हैं।”

उसने एक दीर्घ श्वास लिया। जान पड़ा, जैसे हृदय की सारी शुभ कामनाएँ जो फूटने को आई थीं, वह फिर खींच लेना चाहता हो !

“वास्तव में वह एक अच्छे कवि हैं। मैं उनकी रचनाएँ बड़े चाव से पढ़ता हूँ। कभी खत लिखें, तो उन से मेरा प्रणाम कह दीजिएगा।”

इच्छा तो हुई, तुम्हारे बारे में सारा बातें खोल कर कह दूँ। परन्तु यह भा देखा कि उसका उत्कण्ठा इतने ही से शान्त हो चुकी थी। फिर, कुछ बातचीत नहीं हुई।

आज शाम को ‘नौका-विहार’ का प्रोग्राम है। नावें ठोक हाँ चुकी हैं। वसन्त का यह अन्तिम पूर्णिमा है।

—तुम्हारा, शशि।

किंग एडवर्ड अस्पताल,
लखनऊ।

ता० २२-५-३६

प्रिय शशि,

चार दिनों के बाद मुझे अस्पताल से फुर्सत मिल जायगी। लेकिन, मैं अभी दरियापुर आना चाहता हूँ। फौरन तार से जवाब तो दो कि चला भाऊँ।

—तुम्हारा, विष्णु।

भावना भवन,
दरियापुर, इलाहाबाद।
ता० २२-५-३६।

प्रिय विष्णु,

परसों एक खत लिख चुका हूँ। और, उसी दिन हमारा नौका-विहार था। पूर्णिमा की रात्रि थी ! ऐसी सुन्दर चाँदनी दुनिया को

कल जो मैंने तार दिया था, उसका जवाब नहीं आया। मैं बहुत व्याकुल हो रहा हूँ। जल्द लिखो कि मैं आ जाऊँ !

—तुम्हारा, विष्णु।

पुनश्च—एक्सप्रेस डिलेवरी से आज ही तुम्हारी चिट्ठी मिल गई। मैं अब चंगा हो गया हूँ। कोई तकलीफ नहीं। डाक्टर ने कहा था, परसों पट्टी खुल जायगी। और मैं घूमने-फिरने लायक हो जाऊँगा। बोलो, मैं परसों आ सकूँगा कि नहीं। कुमारी कल्पिता देवी को मेरा प्रणाम कहो।

—तुम्हारा, विष्णु।

भावना भवन,

दरियापुर, इलाहाबाद।

ता० २४-५-३६।

प्रिय विष्णु,

तुम्हारे दोनों तार और चिट्ठी मिली। इतने परीशान क्यों होते हो? आना है, तो चले आना घर है। मगर, इतनी जल्दबाजी क्यों? कल्पिता कहीं भागी नहीं जाती! फिर, मैं यहाँ हूँ ही। चिन्ता किस बात की?.....निश्चित रहो। मैं तुम्हारा ही काम कर रहा हूँ।

और, जानते हो, कल्पिता वायलिन भी बजाना जानती है। इतना सुन्दर बजाती है कि, क्या बताऊँ? तुम परितोषशील और अमर दत्त को न भूल जाओ, तो कहना।

कल मुझसे पूछती थी, आप के कवि मित्र कैसे हैं?

मैंने कहा, बहुत सुन्दर, बहुत शिष्ट, बहुत सम्य और बड़े रसिक.....

“क्या मेरा भेंट वह पसन्द करेंगे?”

“क्यों नहीं?”

“बड़े आदमी है” कभी बुलाइयेगा नहीं उन्हें! मैं उनके दर्शन कर अपने को धन्य समझूँगा।”

“जरूर.....जरूर.....आपका नाम सुनकर तो वे सिर के बल दौड़े आयेंगे ?”

“आप तो मजाक करते हैं !”

“नहीं, सच कहता हूँ ।”

इसके बाद वह वायलिन पर कोई गत बजाने लगी । मैं तन्मय होकर सुनता रहा । कभी भावावेश में उसके अधर फड़क उठते, और कभी गाते-गाते खाई-सी हो जाता ।

अबतक मैं सुनता आया था कि बंगाल की लड़कियाँ ही भावुक होती हैं । परन्तु अब देखता हूँ, कि यू० पा० की लड़कियों में भी भावुकता की मात्रा कम नहीं होती ।

तुम अपना दो चार कविताएँ भेज देते ता वह उन्हें गा कर बहुत प्रसन्न होता । उसे संगीत से बहुत प्रेम है । कहता है, तुम्हारे गीतों में उसे वही चीज मिलता है, जो वह चाहता है ।

न मालूम, तुमने उसपर कौन-सा जादू कर दिया है कि वह बराबर मुझसे तुम्हारा हाज पूछता रहता । ओ अज्ञात कवि ! उस दिन वह तुम्हारा तस्वीर माँग रही थी । इतनी उत्सुकता है उसे तुम्हें देखने की । मगर, तुम्हारी तस्वीर होती मेरे पास, तब तो मैं देता ! मेरा ट्रंक, बिस्तर, अलमारी, सब ढूँढ़-ढाँढ़ कर, अन्त में निराश होकर चला गई । तुम्हारी याद में, न जाने, उसे कौन-सा सुख मिलता है ?

—तुम्हारा, शशि ।

किंग एडवर्ड अस्पताल,
लखनऊ ।

ता० २५-५-३६ ।

(५)

प्रिय शशि,

सुबह की गाड़ी से मैं चल चुका हूँ । आशा है, दोपहर तक जरूर प हुँच जाऊँगा । कल्पिता को प्रणाम । —तुम्हारा, विष्णु ।

भावना भवन,
दरियापुर इलाहाबाद ।
ता० २५-५-३६ ।

प्रिय विधु,

मेरा काम अब खत्म हो गया है। आज तुम्हारा पट्टी खुल जायगी। अब तुम उसी तरह चलने-फिरने लगोगे, जैसे इकास दिन पहले थे ! मन-बदलाव का अब ख़ास जरूरत नहीं रहा। इसलिये आज यदि वह भेद मैं खोल दूँ, तो बुरा मत मानना !

कल्पिता बिल्कुल मेरे दिमाग की उपज थी। इसमें सत्य का अंश उतना भी नहीं है, जितना दाल में नमक ! तुम्हारे लिए एक ढवाँई महल बनाया, जिसे आज तोड़ दिया। तुम्हारा भी दिन बहला और मुझे भी आनन्द मिला।

भाई, यह देहात है। पहले हाँ कहा था। फिर, तुम्हारा बेवकूफी पर हँसी भी आई कि कैसे विश्वास कर बैठे, कि कल्पिता इस घोर देहाती गाँव में.....खैर यह अच्छा हाँ हुआ।

तुम्हारे आने की अब जरूरत नहीं। लखनऊ की सैर करो। सिनेमा देखो, धूमो-फिरो। गोमती का लहरों का आनन्द लो। भार्मी को घर पहुँचा कर मैं भी बहुत जल्द तुमसे मिलने की कोशिश करूँगा। खुश रहो।

तुम्हारा, शशि।

पुनश्च:— यह तुम्हारा तार। ताँ, क्या सचमुच तुम आ रहे हो ?
“हा-हा-हा-हा, आओ। शहर के बाद गाँव में आने से कुछ मजा तो रहेगा हाँ। अब मैं इस खत को डाक में नहीं डालूँगा। भार्मी को दिये जाता हूँ। वह तुम्हें दे देंगी। और, देखो.....मैं एक जरूरी काम से आज ही इलाहाबाद जा रहा हूँ। माफ करना। भार्मी को कहे देता हूँ, वह तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होने देंगी। कल तक मैं अवश्य लौट आऊँगा। तुम आराम से आकर ठहरो।

—तुम्हारा, शशि।

ना छेड़ो सैया

माधव की बड़ी इच्छा थी कि गोमती उससे दिल खोलकर बातें करे। वह एक सुशिक्षित नवयुवक था। उसे साहित्य से चाव था और कविता से प्रेम ! क़ुब में जाकर विविध भाषाओं की मासिक पत्र-पत्रिकाओं को शौक से पढ़ना उसका रोज का काम था। उसने मापासा की कहानियाँ पढ़ी थीं; और झूगो के उपन्यास। वह चाहता था कि गोमती भी आये और उन्हीं उपन्यास-कहानियों की नायिका के समान उससे हँस-हँस बातें करे। जीवन में 'रोमान्स' लाने का इच्छुक वह नहीं था। उसकी धारणा था कि 'रोमान्स' जिन्दगी को बरबाद कर देता है। फिर भी, माधव की बड़ी इच्छा थी कि जिसको वह दुनिया में सबसे ज्यादा प्यार करता है या प्यार करने का अधिकारी है वह यदि किसी चॉदनी रात में नन्दन-वन का अप्सरा-सी राका-किरणों के सहारे नीचे उतर कर उसके प्रेम-विधुर प्राणों में विलास का नृत्य-गीत न भर सके, तो कमसे कम गले में हाथ डालकर, हँसकर, अँखिं नचाकर एकबार 'प्रियतम' का सरस सम्बोधन भी तो कर दे। वह इसीसे तृप्त—प्रसन्न

हो जायगा। सन्तोष कर लेगा। किन्तु, सबसे जबरदस्त ठेस उसको उस वक्त लगती, जब वह कौशिश करने पर भी गोमती की भयानक लज्जा को दूर करने में अपने को समर्थ नहीं पाता !

कहते हैं, लज्जा स्त्रियों का भूषण है। शृङ्गार है। हो, पर सभी वस्तुओं का एक निर्धारित सीमा होता है। और जब कोई अच्छी चीज भी सीमा का व्यतिक्रम कर जाती है, तो उसे बुरी कहने में कोई हर्ज नहीं। नदियाँ अपने दोनों कूलों के अन्दर कल-कल करती हुई कितना सुन्दर मालूम पड़ती हैं। मगर, वही जब बाँध तोड़कर वेग से उमड़ चलती, तो गाँव के गाँव उनके धारा-प्रवाह में तिनके की तरह बह जाते। गोमती ने निश्चय कर लिया था कि चाहे जो हो, मगर, वह पर्दा तो हरगिज नहीं छोड़ सकेगी। उसे, शहर की अन्य उदण्ड लोकड़ियों का व्यवहार बिल्कुल पसन्द नहीं था। और इधर माधव की बड़ी इच्छा थी कि उसका प्रेयसी कम से कम उसके सामने तो घूँघट का आडम्बर उतारकर फेंक दे। परन्तु उसका प्रेयसी का न जाने, कैसे इतना विश्वास हो गया था कि अवगुंठन उतारते ही भले घर की नारी और साधारण बाजारू वेदिया में कोई फर्क नहीं रह जाता।

गोमती ने अपने गाँव में यहाँ देखा, अपने घर में यही देखा और अपने हृदय में भी यही देखा। उसे ऐसी ही शिक्षा मिली थी। ऐसा ही वायुमण्डल प्राप्त हुआ था। सबसे, खुले-आम, मिल सकती हो; मगर, अपने पति से नहीं ! दुनिया में अगर किसीसे पर्दा करने की जरूरत है, तो, वह एक मात्र स्वामी से हो।

और, संसार में चाहे जो भी ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे हों, सबसे सब जगह हाट-वाट, इधर-उधर, अगल-बगल, भेंट-मुलाकात हो सकती है। आँखें लड़ सकती हैं और आवश्यकता पड़ने पर बातचीत भी की जा सकती है। कोई एतराज नहीं; किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं। बन्धन है, कोई कैद है—तो, उसी 'पात' नामके जन्तु के लिये। उसे आजादी नहीं दी जा सकती। वह मुक्त नहीं किया जा सकता। क्यों ?

क्योंकि, वह पति है । स्वामी है । और, है वह स्त्री के सुख-दुख का सार्था ।

और, अन्धा समाज !

माधव जिन्दगी में शायद पहलीबार ही ससुराल आया था । गो, गोमती से उसका व्याह हुये छै वर्ष बात चुके थे; और इतनी लम्बी अवधि में वह स्कूल से कालेज और कालेज से बी० ए० की डिग्री भी प्राप्त कर चुका; लेकिन, ससुराल नाम की कोई चिड़िया होती है— यह जानने का मौका उ० पहलीबार ही मिला था । मनचले सह-पाठियों से सुन चुका था । किताबों में पढ़ चुका था । किन्तु, अपना व्यक्तिगत अनुभव नहीं के बराबर था । अबतक उसे यहाँ मालूम था कि घर और ससुराल में सिवा कुछ पार्थिव उपकरणों के तत्त्वतः कोई विभेद नहीं होता ।

परन्तु, यहाँ आने पर उसे ज्ञात हो गया कि ससुराल और घर में जर्मान-आसमान का फर्क है ! यहाँ उसे वह स्वतंत्रता नहीं, जिसको उपभोग करने का वह घर पर आदी था । उसका हरएक हरकत पर ध्यान दिया जाता । उसका हरएक बात पर गौर किया जाता । चलते-वक्त स्वतः उसके दिल में यह खयाल पैदा हो जाता कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है ? आगे पैर रखने के पहले एकबार वह जरूर सोच लेता । किसीसे बोलने के पूर्व एकबार वह अवश्य विचार कर लेता । वह न अपनी इच्छा से रो सकता और न हँस सकता । कहीं जाना-आना तो दूर की बात !

और, सबसे मुश्किल और अचरज की बात तो यह थी कि माधव के ससुर फर्स्ट क्लास डिण्टी-मैजिस्ट्रेट थे । उसे ऐसे परिवार से इस तरह के व्यवहार की कतई आशा नहीं थी ।

गर्मी का मौसिम था । कोठे पर उसका बिछावन बिछता चॉदनी-रात में जब वह अकेले अपना पलंग पर सोता, तब एक हूक-सी उसके जिगर में पैदा होती । वह सोचता, यह भी कैसा दुराव है ! और, जब

नीचे से, कहाड़िन निशीथ के सन्नाटे में उसको उठाने आती, तब वह झिड़क देता !

दाई चली जाती और माधव अकेले-अकेले अनन्त आकाश की तारिकामयी छाया में खिन्न-मन से मसहरी के अन्दर सो रहता और चुपचाप सो रहता । फिर तो सुबह ही उसकी नींद खुजती ।

हाँ, फिर सुबह ही उसका नींद खुजती !

एकदिन एकान्त में वह अपनी पत्नी से मिला । दिन नहीं—रात थी । आधो रात । और मिला जान-बूझकर; किसी खास मतलब से ।

“बोली, गोमती ? -- ” उसके स्वर में कितनी व्याकुलता थी, कितना दर्द था - यह उसे ही मालूम !

“अरे, आप तो मेरा नाम लेते हैं !” गोमती ने दाँत-तले जीभ दबा ली ।

“तो, नुक्सान हा क्या है ?”

“नुक्सान !” उसने आश्चर्य की मुद्रा से कहा,—“भला पत्नी का भी इस तरह नाम लिया जाता है कहीं ?”

“नाम नहीं लिया जाता ?” वह बोला—“किसने कहा तुम से ?”

“कहेगा कौन ? मैं खुद जानती हूँ । सुना भी है, पुरुष अपनी पत्नी का नाम नहीं लिया करते !”

“अर्जुन आदमी हो तुम भी भाई ! अच्छा, जाओ !” उसने कहा, “अभी मैं इस विषय पर ज्यादा बहस नहीं करूँगा । जो कहना है, उसे कहने दो ।”

“कहिये न—शौक से कहिये !” गोमती ने उसी बेरुखी से जवाब दिया,—“मगर मेरा नाम जुबान पर मत जाइये, मेरे सिर पर व्यर्थ ही पाप चढ़ जायगा !”

“अच्छा; नहीं जाऊँगा । मगर, यह तो बताओ तुम मुझसे इतनी खिँची-सी क्यों रहती हो ?”

“मैं खिँचा रहती हूँ ?” वह चौंक कर बोली “यह आप पर

किसका परिछाई पड़ी ?”

“हाँ, तो मैं दूसरे की बात थोड़े कहता हूँ ! सच पूछो तो, मैं यहाँ सिर्फ तुम्हारे हाँ लिये आया । मुझे न तो ससुराल से उतनी मुहब्बत है और न तुम्हारे पिता के रूपों से । मैं केवल तुम्हीं को चाहता हूँ । तुम्हीं को....यह कह कर माधव ने गोमती को अपनी तरफ खींच लिया । बेचारी छुई-मुई-सी सकुचा गई ।

“अरे, कोई देख लेगा—तो ?”

“वाह, ! आधा रात को.....” उसने आतुर होकर कहा, “और कोई देख लेगा ! खूब कही !”

“जरा चुपके बोलिये; आपको मेरी कसम । चुपके बोलिये, कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा ?”

“कौन सुन लेगा ? अभी यहाँ है ही कौन ?”

“नीचे बरामदे में लोग सांथे हैं ।” अपने पति के कान में गोमती ने फुसफुसा कर कहा ।

“तो सांने दो । सुनकर कोई करेगा क्या ?”

“हँसेगा !”

“हँसने से क्या होता !”

“बेइज्जती ।”

“वाह रे !” माधव ने बिल्कुल लापरवाह तरीके से कहा “पति-पत्नी आपस में बातें करेंगे, हँसेंगे, बोलेंगे; तो बेइज्जती होगी । और, वही पुरुष जब रण्डी का नाच देखेगा, शराब पी कर गाली बकेगा और दाज-मण्डी की सैर करेगा—तो, उसके आदर-यश में चार चाँद लग जाँयेंगे !”

माधव तैश में आ गया ।

गोमती सिहर उठी । उसने माधव के मुँह पर अपना हाथ रख दिया—“धारे धीरे बोलिये । नहीं, तो मैं भाग जाऊँगी !”

“भाग जाओ । मैं तो अब चिल्ला-चिल्ला कर घरवालों को जगा दूँगा ।”

“जरा ठहर जाइये । मुझे जाने दीजिये । फिर, जितना जी चाहे, चिलाइयेगा । “उसकी आवाज में एक किस्म की घबराहट थी ।

“जाओ न !” माधव बोला, “तुम्हें रोकता ही कौन !”

“तो, लीजिये ! मैं जाती हूँ ।”

वह जैसे आइ, वैसे ही चली गई । माधव बुत सा बैठा रह गया—

माधव के सालों की बात मत पूछिये । ये साले भी बड़े बदमाश जीव होते ! ज्योंही कभी गोमती से माधव का आमना-सामना होने लगता कि दुष्ट बेतरह चिला उठते । पैरों का पायल एकबार जोर-से बजता और एक छाया-सा दावाल पर से खिसकती गायब हो जाती ।

बेचारा माधव तड़प कर रह जाता ।

इन कम्बख्तों के मारे उसकी नाक में दम रहता । मगर कोई चारा नहीं था । कोई उपाय नहीं ।

“घुट के मर जाइये, नर्जी यहाँ सैयाद का है ।”

और, गोमती की माँ की चर्चा चलाना ही फिजूल है ।

एक ओर तो डिप्टीमैजिस्ट्रेट साहब कोट-पैन्ट से लैस रहते; और दूसरी ओर जब वह, वही बाबा आदम के जमाने का साड़ा और अँगिया पहन झूम-झूमकर चलती, तब देखनेवाले की छाती पर साँप जोट जाता । कहनेवाला दिन थाम लेता और सुननेवाले की मौत हो जाती । वही माँग-पट्टी, वही वेश-भूषा और वैसे-ही नाक की जड़ से लेकर ब्रह्माण्ड के शिखर तक विराट सिन्दूर-शृङ्गार !

जमाना बदल गया—जमाने की चाल बदल गई । लेकिन, माधव की सास के लिये ‘वही’ रफ्तार बेढंगी, जो पहले थी वह अब भी है ।

हाँ, तो उस दिन ज्योंही माधव प्रणाम करने के लिये अपनी सास के पैरों पर झुका, त्यों-ही वह तीन हाथ का लम्बा घूँघट निकाल कर तेरह कदम पीछे हट गई । बेचारा सिर झुकाने के फल-स्वरूप, पुरस्कार में, चाँदी के कुछ चकमक सिक्के लेकर उल्टे-पैर लौट आया ।

रुपयों को तो दूर ही से बिलावन पर फेंक दिया। और, कुर्सी पर बैठकर सोचने लगा—“यहाँ क्यों आया वह ? क्या उसके अपनी माँ नहीं ? और वह तो सास और माँ में कोई मौलिक पार्थक्य नहीं समझता। फिर, क्यों ये सब उससे पर्दा करते ?”

उसके ससुर कभी-कभी उसके दिल को घबराहट देखकर कहते,—“बेटा ! यह भा तुम्हारा ही घर है। लज्जाते क्यों हो ? जहाँ जी चाहें, जाओ-आओ।” किन्तु, माधव चुपचाप उनकी बातों को सुन लेता। कुछ उत्तर नहीं देता। उसे स्वयं नहीं मालूम कि वह खुद लज्जाता है, या और कोई।

वह खुद अन्दर जाने में परहेज करता। भला अपनी नटखट पग-ध्वनि से किसीको हिरणा के समान चौंका देना कहाँ की शराफत है ? वह नहीं चाहता कि लोग उसकी आहट पर भेड़ों की नाई तितर-बितर हो जायें ! वह बाघ थोड़े है ? और फिर बाघ की अपेक्षा वह एक साधा-सादा आदमी रहना ही अधिक पसन्द करता है।

माधव जब भोजन करने जाता, तब रसोइया चुपचाप आगे में थाली रख देता। वह खाये या भूखा रहे। प्यास लगने पर नौकर ग्लास में पानी दे जाता—वह पिये या नहीं पिये ! घर पर उसके बहन थी, माँ थी; और थे भाई। बहन भोजन परोसती, माँ थाली ले आती और छोटे-छोटे बच्चे चारों ओर से उसको घेर कर बैठते। वह पहले उन लोगों के मुँह में कौर दे लेता तब आप खाता, नहीं तो वे रुठ जाते ! फिर तो उनको मनाते-मनाते भात भी ठंडा हो जाता।

और यहाँ ?

गोमती नौकरों से मजे में बातें करे गोमती की माँ कुजड़े-कबारियों को सड़क पर से बुलाकर तरकारा का मोल-भाव करें; मगर उससे बोलनेवाला कोई नहीं ! और उसकी छुट्टी का नाजुक घड़ियों को हँस-बोलकर बिता देनेवाला भी कोई नहीं।

ससुर से तो वह संयोग पड़ने पर ही बोलता; और ये साके—ये

साले इतने बदतमीज होते कि इन्हें हर वक्त दिल्लगी ही सूझा करती !

अधिक दुःखी होने पर माधव गोमती से पूछ बैठता—“तुम मुझसे दिन में क्यों नहीं मिलती ?”

गोमती का यह दस्तूर था कि रात के दो-ढाई बजे, जब सारा मुहल्ला बेखबर हो जाता और उसके परिवार के सभी लोग नींद के नशे में बेहोश हो जाते, तब वह दबे-पैर बिल्ली-सी अपने पति के पास पहुँचती और चुपचाप चारपाई के एक कोने में बैठ जाती ।

माधव कभी जगा होता, कभी सोया ।

गोमती कभी तो लौट जाती और कभी उसको धीरे-से जगा देती ।

माधव उठकर बैठता । अँखिं मिलता और भर्राई आवाज में बोलता “क्या है ?”

“गोमती चुप रहती ।

“कौन ?” माधव कहता ।

“मैं हूँ ।” उत्तर मिलता ।

माधव जानता, जरूर जानता कि वह कौन है । फिर महज, छेड़ने का गरज से वह उसको छोड़ना नहीं चाहता—“मैं कौन ?”

गोमती इसबार भी चुप रहती ।

“अरे भाई, साफ-साफ कहो न कि तुम कौन हो” वह कहता, “तुम्हारा नाम क्या है ?”

“कह तो दिया—मैं हूँ !” गोमती घबरा कर कहती, क्या मुझे पहचानते नहीं ?”

“नहीं !” कहकर माधव जो मुसकिराता, उसे अँधेरे में गोमती देख नहीं पाती ।

“तो जाता हूँ मैं ।” और वह चलती ।

“अच्छा; पहचाना !” माधव निराश होकर उस विचित्र-प्रसङ्ग को छोड़ देना ही उचित समझता,—“जाता कहाँ हो ? बैठो ।”

और वह बैठ जाती ।

माधव सोचता, भला रात सोने के लिये है या गप्प-शप्प करने के लिये ? दिन भर बैठ कर मक्खियाँ मारा करो, और रात में आराम करने के वक्त, मजाक करो। यह कहाँ का न्याय है। वह चोर नहीं और उसे यह बहुत बुरा लगता कि उसकी स्त्री रात को, पिछले पहर, चोर की तरह कोठे पर आये ! आखिर दिन में क्या है ? उसे थोड़ा बहुत तन्दुरुस्ती का खयाल भी था। और उसने पढ़ा था कि रात में अधिक देर तक जागने का क्या कुपरिणाम होता है—

इसलिये, वह नाराज हो जाता, जब गोमती कभी दो-दाई बजे अँधेरे में लुकती-छिपती उसके नजदीक पहुँचती।

और वह अन्त में आजिज होकर पूछ बैठता,—“तुम मुझसे दिन में क्यों नहीं मिलती ?”

“दिन में ?” गोमती अकचकाकर कहती,—“सब के सामने ?”

“हाँ, हाँ, सबके सामने।” यद्यपि उसका यह अभिप्राय नहीं था फिर भी कह देता वह।

“मैं तो लाज से मर जाऊँगी।”

“क्या मेरे साथ तुम्हारी शर्दी नहीं हुई ?”

“... .. ?”

“बोबो न ?”

“क्या बोलू ?”

“क्या तुमने मेरे साथ शर्दी नहीं की ?”

“की।”

“क्या लोगों को मालूम नहीं कि विवाह का क्या अर्थ होता है ?” वह कहता, दम्पती का अबाध मिलन और प्रणय-सम्भाषण !

“कहते चलिये।”

“और, क्या संसार में ऐसा भी कोई मनुष्य है, जो अपने दानों को जी जाँत कर खाय; अपने घर में भी सँभल-सँभल कर चले और अपनी तिजोरी का ताबा भी चोर की तरह खोले !”

‘मतलब ?’

‘मतलब !’ वह गुस्से से दाँत पीसकर कहता,—‘मतलब—खाक !’

‘गुस्सा मत कीजिए। मेरी समझ में बात नहीं आई इसीसे पूछा।’

‘तो, यहाँ समझ लो कि तुम मेरे पास चोर की तरह छिप कर क्यों आती हो ? चमगादड़—या, माफ़ करोगी—उल्लू की तरह रात होते ही पंख फड़फड़ाकर मुझे खाजने निकलती हो और किरण फूटने के प्रथम ही अपने घोंसले में घुस जाती हो ! यह कैसी बात है ? पति और पत्नी के दरम्यान कोई गोपनीय वस्तु भी कहीं है—मेरी समझ में नहीं आता ।’ माधव एक साँस में सारी बातें कह जाता ।

‘मुझे शर्म आती है ’ वह कहती ।

‘शर्म आती है, अपने पति से मिलने में ? शर्म आती है, उससे मिलने में जिसके सुख-दुख की भागिनी बनी हो और जिसकी अर्द्धाङ्गिनी कहलाने में गौरव प्राप्त करता हो ? ऐसी शर्म को गरम पानी में डुबो दो !’

‘मगर, मुझसे तो यह काम नहीं हो सकेगा ।’

‘नहीं हो सकेगा तो मत करो !’ माधव कहता,—‘मैं तुमसे विशेष नहीं कहूँगा । किन्तु, याद रखो—इस वैसाख की दोपहरी में जिस समय तुम अपनी सहेलियों के साथ ताश खेलती रहती हो अथवा खुराटे मारती रहती हो, उस समय मैं तुम्हारा चिन्तन किया करता हूँ । बरबस तुम्हारी याद आ जाती है । और, मैं तुम से दो बातें करने के लिये बेचैन हो उठता हूँ ! और, शाम को जिस वक्त अकेले घूमने निकलता हूँ, उस वक्त भी यही इच्छा होती है कि तुम मेरी बगल में होती ! क्या तुम्हें इसकी खबर है !’

‘क्या सच है ?’ गोमती के गालों पर मुस्कान का हलके गुलाबी रंग की जाली दौड़ जाती ।

“और, जब कहीं कोई नई चीज देखता, नई जगह जाता और नये आदमी से मिलता, तब सोचता कि कहीं तुम भी मेरे साथ होती !”

“क्या मेरी ऐसी ख्वाहिश नहीं होती ?” गोमती सौ बातों का एक जवाब देती—“मगर क्या करूँ, बड़ी लाज लगती है !”

“लाज को दूर करो ।” माधव बोलता—देखो, अब लाज और शर्म नाम की कोई चीज दुनिया में नहीं रह गई है । बीसवीं सदी ने जहाँ सारी मानव-जाति की स्वतंत्रता का जंख-घोष किया है, वहाँ इसने महिलाओं को भी पराधीनता के नाग-पाश से मुक्त कर दिया है । संसार का नारी-समाज आज करवट बदल रहा है । क्या यह कम दुख की बात है कि यूरोप अमेरिका की स्त्रियाँ अकाश की सैर करें, अटलान्टिक पार करें, पुरुषों के लकड़ें छुड़ायें—और, तुम, गाँगी और मैत्रेया पर अभिमान करनेवाली बीरांगनाएँ अपने पति से भी स्वच्छन्दता-पूर्वक न मिल सको !”

“मगर ... ” उससे बिना बोले रहा नहीं जाता ।

“मगर, क्या ?” माधव का कंठ-स्वर तीव्र हो जाता—“फिर, मगर श्ररे, भाई ! शर्म तो पाप से होनी चाहिये । पति तो पाप नहीं । अपने ही देश में क्यों नहीं देखती ? पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात और दक्षिण-प्रान्त में घँघट का सन्यानाश कर डाला गया है । वे खुले आम, सड़कों पर, पार्क में, बाजार में एकत्रित हैं । कितनी भली मालूम पड़ती हैं । कितनी सुन्दर और कितनी तन्दुरुस्त । और, तुम—तुमलोग चन्द घर में सड़नेवाली कपड़े की गुड़िया ! ओह, विधाता !”

“वे ... ” गोमती बीच में ही टोक देती ।

“फिर वे ... ” माधव कहता,—“क्या तुम समझती हो कि वे देवता हैं । नहीं, वे भी आदमी ही हैं । लेकिन उनमें हिम्मत है । ताकत है । वे अपनी इज्जत को पहचानते हैं । तुम में भी ताकत है । मगर तुम अपने को नहीं पहचानती । पहले हिम्मत पैदा करो । फिर, झौंसी की रानी और रानी पद्मिनी की चर्चा करना ।”

“पर, यह कैसे होगा ?”

“ऐसे !” वह जरा हँसकर कहता — “ऐसे होगा । मैं एक दिन प्रण कर लूँगा कि जबतक श्रीमती गोमती देवी स्वयं ही अपने हाथों से भोजन-पात्र लेकर मेरे सम्मुख नहीं आतीं, तबतक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करता ! अनशन का तो यह युग ही है । देखूँ, कब तक तुम मान किये रहती हो ?”

“नही, नहीं; ईश्वर के लिये, अपने लिये, मेरे लिये ऐसा मत कीजिए । मैं कहीं की न रहूँगी जीते-जी मेरी मौत हो जायगी । आपको मेरे सिर की कसम ।’ और वह माधव के पैरों पर अपना माथा रख देती ।

उसे उठाकर गले लगाते हुए माधव कहता — “देख लेना । ऐसा किसी रोज होगा जरूर । अगर, तुम्हारी यह आदत कायम रही । देखें, तुम मेरी बात मानती हो या मुझे भूखों मारती हो ।” माधव हँसने लगता, — “यही तो तुम्हारी परीक्षा है !”

और, उसी समय कोई आहट होती ।

गोमती सिनेमा की तस्वीर की तरह पलक मारते वहाँ से अन्त-ध्यान हो जाती ।

माधव देखता ही रह जाता ।

उस रात माधव नींद को बुला रहा था और वह उससे आँख-मिचौनी खेल रही थी । पलंग पर करवटें-बदलते जब बहुत देर हो गई और चेष्टा करने पर भी वह सो नहीं सका, तब, ऊपर ही चहल-कदमों करने लगा । कभी रेजिङ्ग पर झुक कर उँघती हुई दुनिया की अजसायी जवानी को देखता और कभी पलंग पर चुपचाप लेटकर सोने का बहाना करता । मगर निगोढ़ी नींद ने मानो उसका दिल जलाने को कसम-सी खा ली थी । वह जो गई सो जौटकर वापिस नहीं आई । न मालूम उसने किस दुश्मन से मुहब्बत कर बैठी !

इतने में नाचे से दाईं आ पहुँची,—

“जगे ही हुए हैं, मालिक ?”

“हाँ, तो ।”

“कुछ खबर भी है ?”

“नहीं ।” माधव ने कहा, “क्या ?”

“आज बाबा सिनेमा देखने गई हैं ।” उसने शैतानी से मुसकराते हुए कहा ।

“किसके साथ” माधव अकचका कर बोला ।

“किसके साथ ?” दाई ने नजाकत से कहा—“अपने भाई के साथ । और, ...”

“और ?”

“और, मास्टर बाबू के साथ । मोटर पर ।”

“और, मुझे पता तक नहीं ।”

“आपको क्यों पता रहे ?” जवान कहाँरिन हो-हो कर हँस पड़ी, —“आप उनके लायक हों भी, तब तो ?” और, उसने बत्तीसों दाँत निकाल दिये !

माधव ने कहा—“जाओ ! आज मैं यहीं सोऊँगा । वह जब आये, तब मुझे उठा देना । समझीं न ?”

आखिर, वह उठाने आई । माधव गया । और दिन रहता, तो कभी नहीं जाता ।

गुस्से से उसका चेहरा तमतमा रहा था । चिन्ता और अनिद्रा ने उसकी आँखों को ओरहुलका फूल बना दिया था । जाते ही उसने पूछा —“क्यों, आज कहाँ गई थीं ?”

“गई थी जरा सिनेमा देखने ।”

“किसके साथ ?”

“मोहन के साथ ।”

“और, मोटर मोहन ही चला रहा था न ?”

“नहीं, गोमती सिटपिटाकर बोली,—“मोटर मास्टर साहब

चला रहे थे।”

“हूँ।” माधव का स्वर विकृत हो गया—“उसके साथ सिनेमा गई और मुझसे क्यों नहीं कहा?”

“कैसी कहती आपसे?”

“क्यों?”

“मुझे लाज लगती।”

माधव जैसे आसमान से गिर पड़ा—“तो, खत भेज देती?”

“खत?” गोमती आश्चर्य के भाव प्रकट करती हुई बोली,—

“खत! खत कैसे भेजती? कोई पढ़ लेता तो?”

“तो, दाई के मार्फत ही कहला भेजतीं!”

“ओह, यह तो मुझमें नहीं होता।” गोमती ने अन्यमनस्क-सी कहा,—“कम से कम इस जन्म में तो नहीं!”

क्यों?”

“कोई जान लेता, तो?”

“तो, तुम्हें फॉर्सा पर जटका देता” वह विशुद्ध होकर बोला—

“और, कालापानी की सजा मिल जाती!”

“अरे ऐसा अपशकुन मुँह से मत निकालिये।”

“बेवकूफ!”

“तो, क्या आप मेरे साथ चलते?”

“जरूर।”

“मास्टर साहब क्या खयाल करते? और मोहन.....तनिक बिचारिये तो!”

“और, मास्टर साहब के सामने तुम कैसे हुई?”

“वह जो मोहन को पढ़ाते हैं!”

“और, सिनेमा में इतने जोगों के सामने?”

“अरे, वे मुझे पहचानते थोड़े ही थे!” गोमती मुसकिला पड़ी—

“आप भी कैसी बात करते हैं?”

“हे भगवन् ! तो क्या मैं एक मास्टर से भी गया गुजरा हूँ । और, सिनेमा के उजड्डु तमाशबीनों से भी ज्यादा बदनर्साब !” माधव की क्रोधाग्नि में घृताहुति पड़ गई ।

“कैसे समझाऊँ मैं आपको ?”

माधव जल्दा-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आया ।

वह सोचने लगा, दुनिया कितनी बेहूदा है । संसार में कितना पाखण्ड है ! अच्छे-अच्छे खानदान की लड़कियाँ जब मेला-ठेला में जाती हैं, तब इस तरह निर्लज्जता से टहलती फिरती हैं कि शर्म को भी शर्म आ जाती । और वहाँ जब अपने-अपने घर में रहता है, तब पति से भी पर्दा !

बाजारों में उचकने-गुण्डों के धक्के वे बर्दाश्त कर सकतीं ! लेकिन, वहाँ घर में अपने निकटतम सम्बन्धियों से भर-मुँह बोलना भी उन्हें दुस्तर हो जाता ! रेल में खुले-आम सैर करेंगी । तौंगे से उचक-उचक कर राह चलतों पर नजरें दौड़ाएँगी, सड़क का भाड़-भाड़ में साना निकालकर घुमेंगी मगर, अपने घर में अपने ही स्वामी से, अपने ससुर से और अपने जेठों से मुँह छिपाएँगी । क्या अजीब तमाशा है ! वाह री, दुनिया और वाह रे तेरे ढंग !

दूर कहाँ जाओ, हन्हीं माँ-बेटियों को देखो न ! मेरी इष्टि पड़ते ही दिन में सितारे की तरह छिप जाती है । मगर जुदागिर चपरासी से खुलकर बतियायँगी । गोया, वह उनका सगा-भाई-भतीजा हो । अभी मकान मरम्मत हो रहा था । राज-मिर्खा दीवाल जोड़ रहे थे । और, वे उनके सामने ही चबूतरे पर स्नान कर रही थीं । जैसे, यह कोई बात हा नहीं ।

अगर, कोई मौके पर पूछ बैठे तो, तुरन्त जवाब दे देंगी—“कारो-गरीका काम कैसे बन्द किया जाय ?” गोया पैसे के सामने इज्जत कोई चीज ही नहीं ।

और, एक मैं—मैं क्या कहूँ ?

खैर; अब तो गलती हो गई। यहाँ आकर मैंने अवश्य भूल की। भले ही मेरे यहाँ रहने से इन लोगों को कष्ट न हो परन्तु, ऐसी हालत में मेरा यहाँ रहना ठीक नहीं। जितना शीघ्र हो—चला जाना ही बेहतर है। छुट्टी मागंगा, पूछूँगा अगर कह देंगे, तो उत्तम। नहीं तो, किसी-न-किसी बहाने जरूर इस कैदखाने से निकल भागंगा।

आखिर, जाना है जरूर।

सुबह होते ही डिप्टीमैजिस्ट्रेट साहब ने माधव को बुलाकर कहा,—“बाबू ! खूब मन लगाकर पढ़ो। एम० ए० पास कर लो। फिर आइ० सी० एस० में कम्पोट करना है। और, नहीं तो मेरी जगह कहाँ जायगी ? उसे तो खुदा के घर से भी तुम्हारे लिये ला बूँगा।”

“हाँ, मगर, अब मैं घर जाना चाहता हूँ। गर्मी की तातील भी खत्म हो रही है। मकान नहीं गया, तो वे लोग बुरा मान जायँगे।” माधव ने डरते-डरते कहा और कह कर जैसे बगलें झँकने लगा।

“क्या कोई तकलीफ हुई, बेटा ?”

“नहीं, तकलीफ क्या होगी ? किन्तु, भैया की चिट्ठी आई है !”

“अच्छे तो हैं न ?”

“अच्छे हैं।” माधव बोला,— “लिखा है, शीघ्र चले आओ।”

माधव झूठ बोल गया। और, वही झूठ काम भी कर गया। चिट्ठी की खोज नहीं हुई। नहीं तो आफत मच जाती। सारा भेद खुल जाता।

वह था भी इस फन में हाशियार। हमारे स्कूल और कालेज इसकी अच्छी तालीम देते हैं। किसी जरूरी काम के लिये टीचर या प्रोफेसर से छुट्टी माँगो, नहीं मिलेगी। जरा सिर-दर्द या पेट-दर्द का बहाना कर दो, फौरन सारी कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी। यही न, जरा झूठ बोलना पड़ेगा।

और अपने पेशे के लिये झूठ कौन नहीं बोलता ? इस दुनिया में दूध का धुला कौन है जो ?

फिर हर्ज ही क्या ?

इसलिये आज माधव को भी झूठ की ही बदौलत घर जाने की इजाजत मिल गई। उस दिन अपराह्न में ही वह विदा हो गया। गोमती से भेंट भी नहीं की और फिर अभिमन्यु की तरह चक्र-व्यूह के सातों द्वार को भेदकर उससे मिलना भी तो सुलभ नहीं था !

ठीक एक हफ्ते के बाद गोमती के पिता को माधव का एक लम्बा पत्र मिला। पत्र का सारांश यह था—

‘मैं आपके यहाँ गया यह सोचकर कि आपका परिवार सभ्य तथा सुसंस्कृत होगा। मगर, वहाँ जानेपर आशा के बदले मुझे घोर निराशा ही हुई। मुझे दर असल नहीं मालूम था कि आप नई रोशनी की चकाचौंध में आने पर भी, पढ़े-लिखे होने पर भी, इतने दकियानुसी विचारों के होंगे।

“क्षमा करेंगे। मैं आपको दोष इसलिये देता हूँ कि आप स्वयं सुधारवादी होकर भी अपने घर को नहीं सुधार सके। मुझे इसका खेद है।

“आपके परिवार में मैं सुख-पूर्वक एक क्षण भी नहीं रह सका। मैं उसको अपना ही मकान समझ कर गया। लेकिन, आपने कभी मुझ पर यह जाहिर नहीं होने दिया कि वह मेरा मकान है।

“जब तक मैं वहाँ रहा, एक अपरिचित की तरह रहा। भला इससे अधिक परिताप का विषय और क्या हो सकता कि मेरी स्त्री और आपकी स्त्री—जिन्हें मैं माँ के तुल्य ही समझता हूँ—मुझसे पर्दा करें ! ऐसी ससुराल से तो मैं किसी सराय या धर्मशाला में ठहरता तबे अच्छा था !

“खैर, अब मेरा अन्तिम नमस्कार स्वीकार काजिये। यदि गोमती को भेजने की इच्छा हो और वह मेरे पास आना चाहे, तो मोहन बाबू के साथ भेज दीजिएगा। बस।”

मतभेद

“वह कविता भी कोई चीज है, जिसमें रामका नाम न हो”—
जिस दिन आये, उसी दिन उन्होंने कहा ।

“तब कविता की क्या जरूरत ?”—मैं पहले ही चरण में उनसे
उत्तर पड़ा—“एक करोड़ राम-नाम की पुस्तक लिखकर, छापवा कर
बँटवा देना चाहिये । वही अमर-साहित्य होगा ।”

वह थे राजो बाबू ! उम्र करीब चौत्तिस साल; रंग गोरा, कद
लम्बा और बड़ी-बड़ी मूँछें ।

गोल्डस्मिथ ने अपनी किसी कविता-पुरतक में एक देहाती स्कूल-
मास्टर की बुरा तरह खबर ली है । लोग कहते हैं कि बचपन में अंग्रेजों
के उस अष्ट कवि को कभी ऐसे गुरुजी से जरूर पाजा पड़ा था और फल-
स्वरूप, गुरुदक्षिणा में जवानों के दिनों में उसने उसके विषय में ऐसी
बातें लिख दीं ।

बेचारे गोल्ड-स्मिथ ने अपने गाँव के गुरुजी के बारे में लिखा,
शायद उसकी जानकारी वहीं तक थी, माना ।

किन्तु, मेरा तो कहना यह है कि अगर कोई एकबार हमारे राजो बाबू को देख ले, तो निस्सन्देह सारे स्कूल-टीचरों के विषय में उसका धारणा बदल जाय और संयोगवश यदि वह कवि भी हो, तो फिर क्या कहना !-अवश्य ही वह उनके ऊपर भी हिन्दी में कोई महाकाव्य, या नहीं तो खण्ड-काव्य हां सदा, इस धड़ले से लिख मारे कि उसकी एक लाख प्रतियाँ तो प्रकाशित होने के पहले ही हाथो-हाथ बिक जायँ !

ऐसे हैं हमारे राजा बाबू । Village School Master के वर्णन में अतिशयोक्ति हां सकती, परन्तु हमारे इन School teacher में किसी प्रकार की अतिशयोक्ति की गुंजायश नहीं । सारी बातें सवा सत्रह आने सच ।

ता, इन्हीं को एक दिन मैंने अपने घर पर निमन्त्रित किया ।

इस प्रसङ्ग में एक बात और बतला दूँ !

ये ठहरे हमारे परिवार के पुराने परिचित—नये नहीं । वर्षों से मैं इन्हें जानता हूँ—तबसे, जब मैं अवधूत-सा दिगम्बर के वेश में, सड़कों पर, गलियों में दौड़ता फिरता और ये मेरे पीछे डण्डा लेकर चक्कर लगाया करते ।

और, उम्र का तो कोई जिक्र हां नहीं ! आठ-दस साल के मुझसे बड़े, और रिश्ता भी वैसा हां मजेदार । इन्हें भैया कहकर पुकार लिया करता हूँ ।

तो, अपने घर पर कुछ प्रारिचारिक झंझटों के उपस्थित हो जाने के कारण, गत गमी की छुट्टियों में मैंने इन्हें बुलाया ।

ये आये ।

आये क्या, जवाहरलाल का तूफानी दौरा हुआ यही समझिये !

मैं इन्हें बहुत दिनों से आह्वान कर रहा था, परन्तु, जैसी मेरी बुलाहट थी—यानी, जबानी, ठीक वैसा ही इनका आगमन भी था—बिल्कुल जबानी । मेरे खत के जवाब में खत आता कि आ रहा हूँ । तार के उत्तर में तार आता कि बस, पहुँचा । मगर, ये खुद कभी

नहीं आये ।

और, उस दिन जब यह अकस्मात् मेरे घर पर आ गये, तब, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया । कुछ खुशी भी हुई और कुछ.....अरे, इन्हें कहाँ बिठाऊँ ? सिर पर लूँ या आँखों में !

मेजपर कुछ किताब पड़ा हुआ थी । उन्हें पढ़ने की अपेक्षा तस्वीर देखने का शौक कुछ ज्यादा है ! इसी लाजबंद से एक खूबसूरत-सी किताब उन्होंने खींच ली । वह था शायद उमरखैयाम का बंगला-संस्करण ।

“शृङ्गार रस की रचनाएँ मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती । रस तो वार है—या, नहीं तो शान्त !”—उलट-पुलटकर वे बोले ।

“परन्तु, शृङ्गार को आप एकदम साहित्य से निर्वासित नहीं कर सकते”—मैंने कहा—“आखिर, वे आतङ्कवादी नहीं हैं जो अण्डमन...”

“तुम बेवकूफ हो,” बांच में हा बात काटकर वे बोल उठे, और मेरे मुँह की बात मुँह में ही रह गया ।

मतभेद किससे नहीं होता ? और, यदि उनसे मेरा मतभेद ही हो गया, तो बुरा क्या ?

परन्तु, यह ऐसा मतभेद नहीं था । उन्हें दावा था अपनी उन्नतता का, अपने रिश्ते का और सबसे बढ़कर अपनी स्कूल-मास्टरा के पद का ।

सच कहूँगा, तो बुरा मान जायँगे । दुनिया ही ऐसी है, मगर झूठ बोलकर ही मैं कौन-सा कारु का खजाना पा जाऊँगा ?

उस दिन दोपहर में जब मैं खाकर जौटा, तब दिल बहलाने का गरज से उन्हीं के पास जाकर बैठ गया । और, वे जोग लगे मुझे उपदेश देने ।

उपदेश सुनते-सुनते तो मेरे कान बहरे हो गये हैं, और खासकर जब राजा-भैया का लेक्चर चज्जता धाराप्रवाह—“समझे न ? समझे न ?” तब मैं आजिज आकर मन-ही मन अपनी सहनशीलता और धैर्य को काँसने लगता । करता ही क्या, कोई उपाय भी तो नहीं था

सामने !

उनके आगे से उठकर चला जाना सभ्यता के विरुद्ध था—शायद वे बुरा मान जाते, और, उन्हें राकना ता और भा मुश्किल—बिगड़ उठेंगे । अपना अधिकार वे यों ही क्यों छोड़ने लगे !

बस, हो गया झगड़ा । बातों का सिलसिला बढ़ चला ।

मैंन साधे तौर पर उनसे कहा—“भैया ! यह नहीं हो सकता ।”

“क्यों नहीं होगा ?” वे जरा कुपित होकर बोल ।

मैं उनका आदतों से वाकिफ था, इसलिये पुनः कहा—“ऐसा नहीं होता !”

“तुम तो बुजदिल हो—औरत हो !”

मैंने हँसकर कहा, “मजाक नहीं भैया जा ! आप मेरा मतलब नहीं समझें !”

बस, क्या था - उन्हें अग्निशर्मा होते देर न लगी । जरा-सी बात; वे और मेरा मतलब नहीं समझें ! ऐसे कमसखुन वे कब के ?

अक्सर यह देखा जाता है कि कमजोर और दुबले-पतले आदमी को बहुत जल्द गुस्सा चढ़ आता है; नाक से उतरते किंसाको देर ही क्या लगता ?

“मैं तुम्हारे मुँह से ऐसा बातें नहीं सुनना चाहता !”—ये शब्द उन्हीं के थे ।

“आप पहले मेरी बात तो समझ लें.....”

“तुम गधे हो !” मेरा वाक्य खत्म भी नहीं हुआ कि वे बोले और मुझे चुप रह जाना पड़ा ।

मैं उनका मतलब समझ गया । उनका मंशा था कि वे बोलते रहे और मैं चुपचाप सुनता रहूँ—ठाक उसी तरह जिस तरह वे क्लास में अपने लड़कों के सामने कुर्सी पर डटकर बैठते होंगे और लड़के उनकी सच-झूठ बातों को गौर से सुनते होंगे ।

“आप कहिये भी तो.....” मैंने कुछ अजीब ढङ्ग से कहा, कि

उनका पारा तेजा से ऊपर की तरफ चला—“सब जगह कविता से काम नहीं चलता !”

“यह कौन कहता है ?”

फिर वही बात—यानी, मेरी बात आधी दूर पर हा कट गया और उन्होंने कहना आरम्भ किया—“दुनिया को कविता की जरूरत नहीं; तुम कुछ भी नहीं जानते और न कुछ समझते ही हो !”

मुझे भी कुछ तैश आ गया। मैंने कहा—“मैं सब कुछ समझता हूँ।”

“क्या ?”

“जिसे खुदा भी नहीं समझता !”

“खाक-पत्थर !” उनकी आँखें सुख हो गयीं और जबान चंचल—
“तुम खाक-पत्थर भी नहीं जानते ! यह तुम्हारा निहायत कमजोरी है और ऐसा कायरपन की बात मैं हगिज पसन्द नहीं कर सकता !”

मुझे मालूम था कि मैं गलत रास्ते पर नहीं हूँ, और न उतना बुजदिल ही। फिर भी अपना खितबे वापिस नहीं की और प्रसन्नता-पूर्वक सबको अंगाकार करता गया।

“कविता को जीवन से क्या सरोकार ?” फिर वे एकबार काव्य के धरातल पर उतर आये।

“अगर किसी अंग्रेज समालोचक के मत से कविता Criticism of life है, तो उसे जीवन से जरूर सरोकार होना चाहिये” तत्वज्ञ की तरह मैंने गम्भीर होकर कहा।

“मगर, वह Practical नहीं !”

“हो सकता है। परन्तु वे ही Theory होते हैं और Theory ही तो कालान्तर में practice के रूप में परिवर्तित हो जाती है।”

मगर मेरी बात सुने कौन ? भैयाजी अपना ही चर्खा चलाते जा रहे थे—“इटलर और मुसोलिनी, कमाजपाशा और गाँधी।” और न जाने क्या-क्या !

आपको बन्दर की कलाबाजियां तो मालूम ही होंगी। ज्यों ही वह एक डाल से चूकता है, त्योंही दूसरी डाल पकड़ लेता है। इतना बेवकूफ वह नहीं जो एक ही शाखा पर झूलता रहे और जरा भी फिसले तो जमीन पर अररधम।

भैयाजी गिरना तो जानते नहीं, यद्यपि चूकते वे जरूर। मगर, मैं उन्हें बन्दर की उपमा नहीं दूंगा।

मैंने एकबार फिर दुःसाहस किया—‘मैं सब कुछ जानता हूँ!’

अबतक उनका पारा सातवें आसमान पर चढ़ चुका था और वे जोर-जोर से हाथ पटक कर बोल रहे थे—‘चुप रहो! तुमको बाज़ने का शऊर नहीं। मेरे साथ रु-ब-रु बहस कर रहे हो। तुम बदतमीज हो, कमजोर हो, शरीर हो।’

अब मैं भी संभल चुका था। मैंने कहा—‘भैया आपकी बात सहन कर लेता हूँ, बस, यही मेरी कमजोरी है। इसके सिवा और कुछ नहीं! अगर आप इस वक्त मेरे अतिथि नहीं होते और अगर मैंने खुद आपको बुलाया न होता ’’

‘‘नहीं यह तो तुम्हारा फर्ज है कि तुम मेरी बातों को बर्दाश्त करो क्योंकि मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ ’’

मैंने कहा ‘आजतक मैंने किसीकी बात बर्दाश्त नहीं की और अगर आप यही चाहते हैं कि मैं गलत रास्ते पर हूँ, तो आप आहिस्ते से, प्रेम से मुझे समझा सकते हैं। मैं बेवकूफ नहीं, और उतना तो निश्चय नहीं जितना समझते हैं आप। मैं समझ सकता हूँ, परन्तु आप तो स्वयं गुस्से से लाल हुए जाते हैं!’

‘तुम एकदम Unpractical आदमी हो।’

‘‘मानता हूँ। परन्तु मैं दुनियादारी समझता हूँ। करना कुछ और होना और जाना कुछ और ही। हो सकता है, मैं कुछ कर न सकूँ; परन्तु मैं दुनिया की हरएक हरकत को समझता हूँ और जानता हूँ। इतना निश्चित है।’

“तुम्हें अकू कहाँ से आयी ?”

“मगर मैंने आपको राय-मशविरे के लिये बुलाया; अपने ऊपर शासन करने के लिये नहीं। आप मुझे सजाह दे सकते हैं, विचार दे सकते हैं। मुझपर हुकूमत नहीं कर सकते। मैं बहुत पढ़ चुका हूँ। अब ज्यादा मुझे न पढ़ाइये।”

वे नाराज होकर बोले—बस, अब चुप रहो। मैं ज्यादा कुछ नहीं सुनना चाहता। तुम मेरे सामने से हट जाओ।”

“मगर, भैया ! मैं तो आपको अपने सामने रखने के लिये हाँ इतनी दूर से बुलाया था।”

“तुम झूठे हो—झूठ बोलते हो !”

मैंने क्षण भर चुप रहने के बाद कहा—“अब मुझे बोलने की कोई जरूरत नहीं। जब आपने मुझे झूठा हाँ कहा, तब मैं क्या बोलूँ ? किसी को झूठा कहना सबसे बड़ा नैतिक अपराध है। और वह हजार गालियों से भी बदतर है।”

मेरी आँखें डबडबा आयीं और मैं वहाँ से उठ गया।

वे भी गुस्से से पागल होकर पलंग पर लेट रूँ और थोड़ा देर तक इधर-उधर करने के बाद सो गये।

शाम को मैंने पूछा, अच्छा, अब बताओ, तुम्हारा अभिप्राय क्या था ?

मैंने कहा—आप ठहरे स्कूल-टीचर। हर जगह लड़कोंका-सा अदब-कायदा खोजते हैं। आप यह नहीं सोचते कि हममें और आपमें कितना अन्तर हो गया है। मैं भी जवान आदमी हूँ; मेरी भी अपनी समझ है। आप मेरी बात सुनकर कुछ खयाल क्यों नहीं करते ?

“तुम मुझसे छोटे हो, तुम्हे मेरी बात माननी चाहिये ”

“मैं मानता हूँ और मानूँगा। परन्तु आप जरा सोचिये कि अगर आपको ऐसा अवसर मिले तो आप क्या करेंगे ?”

“मैं अनुचित कुछ नहीं करूँगा।”

“अर्थात् ?”

‘अर्थात्, मैं अपने गुरुजनों की आज्ञा का उल्लङ्घन कदापि नहीं करूँगा !”

मैंने कहा आप सच्ची बातें क्यों छिपा रहे हैं ? मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि आप उस वक्त या तो अपने गुरुजनों को गाजी दे देंगे या खुद ही रोने लगेंगे अगर उनके गाल पर थप्पड़ नहीं मार सके तो ।

मुझे इसका प्रमाण देने की जरूरत नहीं पड़ी । क्योंकि उन्हें बखूबी मालूम था कि मेरे सामने ही जब उनके दादा उनपर बिगड़े, तब वे भी उनको खरी-खोटी सुनाने से बाज नहीं आये और काफी गाजी-गलौज के बाद दादा नाराज होकर एक ओर चले गये और हमारे राजो-भैया चादर में मुँह छिपाकर, दूसरी ओर रोने लगे । सान्त्वना देनेवालों में एक मैं था ।

मैंने उसकी याद दिलायी और कहा—“कहिये, अब कमजोर आप कि मैं ? औरतों की तरह आप रोते थे या मैं ? और अपने से बड़ों का सम्मान आप करते थे कि मैं ?”

जिस काम के लिये उन्हें बुलाया था, वह काम नहीं हुआ । राजो-भैया रुष्ट हो गये और बहस में हाँ दिन गुजरे—काम ज्यों का त्यों पड़ा रहा ।

सुबह भैयाजी विस्तर बाँध रहे थे ।

मैंने उनसे मिलना फिजूल समझा ।

गाड़ी का वक्त हो गया था । वे जल्दी-जल्दी स्टेशन की ओर चले ।

और उसी जल्दी में अपना छाता भी भूल गये ।

छाता पहुँचाने के लिये मुझे जबरदस्ती वहाँ जाना पड़ा ।

“तुमने मुझे बुलाकर मेरी बड़ी बेइज्जती की—” मिलते ही पहला सवाल उन्होंने किया ।

मैंने कहा--“यह आपका कसूर है, न कि मेरा ।”

“कैसे ?”

“आप नहीं समझ सके कि मैं कहाँ हूँ ?”

“सो क्या ?”

“यही कि आपने यह नहीं सोचा कि मैंने आपको किस मतलब से बुलाया था ।”

“मैंने सोचा ।”

“जरूर नहीं सोचा आपने । अगर आप सोचते, तो हिटलर और कमालपाशा होने की बनिस्वत आप मेरा मज्जा सलाहकार होना कभी नापसन्द नहीं करते ।”

“खैर, जो हो । मगर तुमने मेरा अपमान किया ।”

“मैंने आपका रत्तीभर भी अपमान नहीं किया ।”

“तुमने मुझे कड़ी बातें कहीं !”

“जिनसे आपको चोट पहुँची ?”

“हाँ ।”

“हर्गिज नहीं ।”

“मैं अभी यहाँ रहता, और तुम्हें कुछ मदद ही कर देता, परन्तु तुम्हारे व्यवहार से मुझे आज ही जाना पड़ रहा है ।”

इतने में गाड़ी आकर प्लेटफार्म पर खड़ी हो गयी । मैंने कहा--
“अगर मैं आपसे नाराज होता या बुरा सलूक करता, तो आज के बदले आप कल ही भाग गये होते । आपका इतना देगतक कुशल पूर्वक ठहरना ही कह रहा है कि मैंने आपके साथ बुरा व्यवहार नहीं किया ।”

“सच ?”

“हाँ ।” मैंने कहा--“मैंने सिर्फ यहाँ देखा, कि आप मेरे मेहमान हैं और मेहमानों को कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिये; नहीं तो, भाई क्या--मैं खुदामियॉ की ऊलजलूल बातें भी बर्दाश्त नहीं कर सकता ।”

“मगर, इसमें तुम्हारी ही हानि है ।”

“ओह ! हानि-वानि मैं कुछ नहीं समझता । मैं स्वतन्त्र जीव हूँ । अगर आर्थिक हानि सहकर भी मैं मुक्त रह सकूँ, तो इसीमें मेरी प्रसन्नता होगी ।” मैं बोलता गया—“हानि के ख्याल से अपने आत्म-गौरव को किराये पर लगा देना मर्यादा के प्रतिकूल है, ऐसा मैं समझता हूँ ।”

गाड़ी खुलने लगी । भैयाजी बबड़ाकर एक खुले डब्बे में घुस गये ।

मैंने सामान अन्दर फेंक दिया ।

“अच्छा, खुश रहो ।” कहकर वे मेरे हाथ से छाता लेकर देखने लगे—“ओह ! मैं तो इसे भूल ही गया ।”

“इसी वजह से तो आपके दर्शन हो गये ।”

“धन्यवाद ।”

“नहीं, छाने को धन्यवाद दीजिये । मैं उपयुक्त पात्र नहीं ।”

गाड़ी धीरे-धीरे स्टेशन को छोड़कर खिसकने लगी ।

मैंने दोनों हाथ जोड़कर कहा—प्रणाम !

चलती गाड़ी की खिड़की से सिर्फ उनकी एक हलकी मुस्कराहट, जवाब में, भाँकती-सी नजर आयी ।

और कुछ नहीं !

गंधा

काबुल का घोड़ा मैंने देखा नहीं, किन्तु लोगों को यह कहते अक्सर सुना है कि क्या काबुल में गंधे नहीं होते ?" इसका तो साफ मतलब यह हुआ कि काबुल में गंधे होते हैं और जरूर होते हैं। और, वहाँ उनका रहना उतना ही आवश्यक है, जितना हिन्दुस्तान में श्रंग्रेजों का। और साथ ही उससे यह ध्वनि भी निकलती है कि काबुल में घोड़ों का महत्व उतना नहीं है, जितना गधों का; क्योंकि लोग भी तो यही कहते कि काबुल में गंधे नहीं होते बजाय इसके कि 'काबुल में घोड़े नहीं होते ?"

यह तो वही हुआ जैसे मैंने कह दिया, हवा में चिड़िया नहीं होती ? बैल को पर नहीं होते ? या, आदमी को दुम नहीं होता ?

न मालूम, सृष्टि के किस अनादिकाल से गर्दभ के साथ मानव का सम्बन्ध चला आता है ! सचमुच वह दिन अत्यन्त मङ्गलमय रहा होगा, जब मनुष्य के नाम के साथ गंधे का गठबन्धन किया गया। मनुष्य जाति का सौभाग्य कि जीवन यात्रा में गंधे-सा सहचर उसे

मिला है और, मानव जाति के एक सदस्य होने के नाते मुझे यह कहते अभिमान के भाव का बोध होता है ।

कोई जरा मोटा हुआ, तो आप लोगों के मुँह से सुनेंगे -- “अमुक गधे-सा मोटा हो गया ।” साधो की चाल अच्छी नहीं हुई, तो माधो जरूर कर्मा कह देगा-- “चलता कैसे है’ गधे की तरह ?” और, स्वर के विषय में तो सुप्रसिद्ध ही है कि अगर मैं गाऊँ और धोबी के कानों में आवाज पड़ी, तो बिना एक-दो लठ्ठ जमाये माने नहीं । और, संयोग से यदि धोबी भी कहीं गधा हुआ, तो दाँ-ढाई मनके कपड़ों के गट्टर के साथ हाँ पूरा आदमी पीठ पर सवार हो जाय, तो ताज्जुब नहीं !

स्वयं गणेशजी को इस बात का दुःख है कि गधे का मुँह न मिलकर हाथी का मुँह मिला । वे बेचारे करते ही क्या ? महादेव ने लाख कोशिशें कीं, लेकिन उस दिन किसी मरे गधे का सिर न मिला; मिला भी तो हाथी का । और मूषक के ऊधम से तो बेचारे दिन-ब-दिन दुबले होते जा रहे हैं । धोबी की कितनी ख़शामदें कीं, किन्तु उसने अपना गधा देना मंजूर नहीं किया । लाचार होकर मूषक की सवारी करना पड़ी और ताज्जुब की बात तो यह है कि ब्रह्मा-बाबा भी गणेश महाराज के लिये एक छोटा-मोटा गधा उत्पन्न नहीं कर सके ।

गधों का दूध, बङ्ग-भस्म से भी अधिक फायदेमन्द चीज है । जाड़े भर तो यह मदनानन्द मोदक का काम देता है । हिटलर ने आस्ट्रिया के पतन के पश्चात्, बर्लिन से यह अपना प्रथम भाषण ब्रॉड-कास्ट किया था कि यह उसाँके दूधका प्रसाद है ! कालेज के स्टूडेण्ट यदि इस पर अमल करें, तो फिर उन्हें मीनसीन, गोल्ड टॉनिक पिल्स और फ्रॉच ऑआइण्टमेण्ट खरीदने को जरूरत न रहे !

महात्मा गाँधी बकरी का दूध पाते हैं । उस बार गोलमेज सभा में जब वह लन्दन गये, तब किसी अंग्रेज सज्जन ने उन्हें एक गधा भेंट किया । गाँधी जी ने यह भेंट स्वाकार करते हुए कहा--“जनाब ! मैं बकरी का दूध पाता हूँ ।” साहब बोला--“क्या आपके देश में गधे

नहीं होते ?” “नहीं” गाँधी जी ने कहा—“उन्हें तो आप ले आये । अब हिन्दुस्तान में सिर्फ बकरियाँ हैं ।”

अकबर ने बीरबल से कहा—“गधे तम्बाकू नहीं खाते ।” बीरबल ने उलट कर माने बदल दिया—“जो तम्बाकू नहीं खाते, वे गधे ।” इसपर अबुलफजल ने कहा—“हुजूर ! दोनों गलत ।” बादशाह ने पूछा—“क्यों ? वह बोला—“मेहरवान् ! गधे सिगरेट पीते हैं ।” अकबर ने कहा—“हाँ ।” और अब हम देखते हैं कि अबुलफजल की भविष्यवाणी सफल हो गयी ।

हमें याद है, जब हमारे कालेज के संस्कृत प्रोफेसर किसी लड़के से बिगड़कर कहते—ए-एस-एस, तब किस तरह क्लास गैज उठता—ए—डवल—एस !” और पंडित जी पढ़ने लगते—“एकदा नैमिषारण्ये रासभो नाम नरपतिः ।”

औरतें मुझे माफ करेंगी, अगर मैं यह साफ कह दूँ कि जिस तरह रासभों का जाति में दोनों लिङ्गों के व्यक्ति पाये जाते हैं, उस तरह मानव समाज में नहीं । मनु के वंशजों में सिर्फ गधा ही होता; उसकी सहगामिनी नहीं । यही कारण है, जो आजतक हमने किसी पुरुष वा स्त्री को अन्य स्त्रः के प्रति यह कथन नहीं सुना—“तुम गधी हो ।” हमारे युग के साहित्यकारों को चाहिये कि वे इस विषय पर ध्यान दें । राजनीति के प्रत्येक क्षेत्र में, जीवन के प्रत्येक व्यवसाय में एवं प्रगति की प्रत्येक दिशा में जब स्त्रियाँ पुरुषों से बाजी मार ले जाना चाहती हैं, तब इस विभाग में ही क्यों पिछड़ी रह जायँ ? भला जिस उपाधि से पुरुषों का सदियों से सत्कार होता चला आ रहा है और जिस उपमा से वे सदा से विभूषित होते चले आ रहे हैं, उसीसे, स्वतन्त्रता की इस विजयोन्मादिनी शताब्दि में भी पुरुषों की अर्द्धाङ्गिनी, “...नहीं” प्रतियोगिनी, स्त्रियाँ क्यों वंचित रहें ? साम्यवाद के इन दिनों में भी, समानाधिकार के इस लोकतन्त्रवादी राज्य में भी ऐसा अन्याय “...महिजाएँ ! यदि इस अवसर को खो देंगी, तो उनके हाथों से

स्वराज्य का एक महत्वपूर्ण अंश चला जायगा और वे सदा के लिये, अपने भविष्य के उज्ज्वल पर्दे पर कलङ्क का कालिख पोत देंगे, जिसका धुलना उतना ही मुश्किल है, जितना हाथा के लिये पेड़ पर चढ़ना ।

फिर भा एक बात जरूर है । और, सिर्फ इसी वजह से हमें औरतों का तारीफ करना पड़ती है । जिस समय विधाता सुन्दरता बाँट रहे थे, उस समय शायद उनके साला के घर बच्चा पैदा हुआ होगा । फल यह हुआ कि विश्वाविद्यालय के परीक्षक का तरह, मियाँ को ९ मार्क मिले और बीबा को ९९ !

और, इस दृष्टिकोण से गधियाँ भी पीछे नह ।

जिस प्रकार, वसन्त सम-भाव से उपवन के सभी पुष्पों पर अपना फाल्गुनी रंग उडेलता है, ठीक उसी प्रकार यौवन भी प्राणी-जगत के समस्त जीवों को जीवन देता है । और, यौवन का अवाक् सामा है, षोडश वर्ष । इसी अवस्था में स्त्रियाँ पूर्ण यौवन का प्राप्त होता हैं और उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में सौन्दर्य फूट पड़ता है । अस्तु,

जहाँ आपने किसी सौन्दर्यवती षोडशी युवती को देखकर मन-हा-मन उसके रूप की प्रशंसा की है, वहाँ क्या किसी षोडशी गर्दभा को देखकर आप मुग्ध हुए हैं ? सम्भवतः आपने यह विचार न किया होगा कि गधियाँ भी खूबसूरत होती हैं । लेकिन, हमने जाना है कि सुन्दरी अगर गर्धा नहीं, तो गर्धा तो अवश्य सुन्दर होता है । प्रमाण में हमने यह भी पढ़ा है कि “प्राप्तेषु षोडशे वर्षे गर्दभा भवति सुन्दरी ।”

जैसा कि हमने पहले ही कहा है, स्त्रियाँ गर्धा नहीं होती, अतएव, यह श्लोक केवल गर्दभा-जनो के लिये ही सुरक्षित है, जिस तरह देवर की तवियत भाभी के लिये ।

और, अपनी मृत्यु के पूर्व परिणित रामावतार शर्मा ने तो मुझे यहाँ तक कहा था कि गर्दभ का अर्थ है, गर्भ देनेवाला । संस्कृत में एक शब्द है, ‘गर्भद’ जिसका अर्थ है, गर्भदाता—जैसे नीरद, सुखद, वरद, इत्यादि । तो ‘भदात्’ सूत्र के अनुसार ‘भद’ का ‘दभ’ हो गया ।

वेद में तो, जहाँ-जहाँ इस शब्द का व्यवहार हुआ है, वहाँ-वहाँ इसके यहाँ मारना हैं। कोई वेदज्ञ विद्वान् इस पर ध्यान दें, तो कुछ विशेष बातों का पता लगे। यो तो डाक्टरों के लिये भी यह एक अनोखा चीज है। टेस्ट-ट्यूब में भी ताँ आखिर कीटाणुओं के मिलन की आवश्यकता होती है। यहाँ तो वह झगड़ा भी खत्म ! और उन चालाक चोरों के हथकण्डे भी बन्द हो जायें, जो दिन-दहाड़े डाका डालते हैं- “पुत्रदाता रसायण बटी, या सिद्धि, मन्त्र यन्त्र ।” शर्माजी यह भी कहते थे कि दत्तारथ को यह योग मालूम ही नहीं था, नहीं तो भरत जैसा बेवकूफ लड़का पैदा ही नहीं होता।

लेकिन, एक बात बड़े मार्के को कहा है। गधे को आजादी हरिज नही मिलता, चाहे, वह बढ़कर ऊँट भी क्यों न हो जाय। मसल मशहूर है कि गधा गया स्वर्ग, तो रस्सी लगी हा गयी। रस्सी लगी गयी जरूर. लेकिन स्वर्ग मिला, यहाँ क्या कम है ? अब कौन गधा यह कहने का दुःसाहस करेगा कि गधा को ऊँचा आहूदा नही मिलता ? फिर, पैरों में बन्धन रहे या मुँह में लगाम, बात एक ही है। और जब गधे को स्वर्ग मिला, तब क्या स्वर्ग का भलाई के लिये इतना भा न हो कि गधा बचा रहे। बेचारा कहीं जिह्वा के स्वाद में पड़कर, जैसे इटला अबर्सानिया को हजम कर लिया, वैसे ही सम्पूर्ण नन्दन-वन को ही चर जाय. तो इन्द्रासन न काँप उठे ! आकाश-गंगा में, मुक्त-स्नान के बाद, आखिर स्वर्गलोक का अप्सराएँ अपने कपड़े किस तरह सुखार्यँगी ?

अगर मैं भूलता नहीं, तो वैद्यों ने भी अपनी किसी जातीय सभा में एक प्रस्ताव द्वारा यह घोषणा की थी कि धन्वन्तरि, जिसे भगवान का एक विशेष अवतार मानते हैं, एक असाधारण गढ़वा थे और वैद्य उनका सन्तान हैं। कहना नहीं होगा कि यह सूक्त उन्हींके वंश के एक विश्व-ख्यात रिसर्च-स्काजर का है, जो फ्राँस के किसी विज्ञान खर-शाला में बर्गों तक शिक्षा-दीक्षा पाता रहा। ऐसा भी कहा जाता है कि उन रिसर्च-स्काजर-महोदय का निबन्ध पाणिनि के उस प्रसिद्ध सूत्र के आधार

पर विरचित हुआ, जिसका आशय यों है—“गदं हन्तीति गदहा ।”

हिन्दी में, प्रत्यय-भेद से, गदहा का गधा हो जाना है । फ्राँस से लौटकर उक्त स्कालर ने एक पुस्तक लिखी—गधा-जाति का इतिहास । विरादरी के लोग उसके इस काम से इतने खुश हुए कि एक चौबे की तौद से कम बाझाला नहीं, पदवा मिली—‘गदभेश’ । अब तो उन्होंने कविता लिखना भी शुरू किया है, जिसमें, प्रत्येक पद के अन्त में, तखल्लुस का तरह, उनका यह उपनाम मौजूद रहता है—जैसे, मसजिद में खुदा या भारत-वासियों के दिल में स्वतन्त्रता के भाव ।

इंगलैण्ड के प्रसिद्ध लेखक चेस्टरटन एक ही कविता लिखकर कवि हो गये, जिसका शीर्षक है—“गधा ।” और, स्टीवेन्सन ने भी गधे के साथ सारे यूरोप का सैर का और एक किताब लिख मारी—“ट्रैवेलविथ ए डन्की !” कहते हैं कि इसकी बिक्री बायबिल से भी अधिक हुई । और, यह सौभाग्य केवल स्टीवेन्सन को ही मिला, सा बात नहीं । रवीन्द्र और किपलिग से लेकर मेरी पल-बक तक तमाम नोबुलप्राइज-विजेताओं का जीवन इसके साथ बीता है । तभी तो वे पुरस्कार भी पा सके ।

आज-कल जिस ‘वन्देमातरम्’ ने हिन्दू और मुसलमानों के दिल में एक जहर-सी पैदा कर दी है, उसका कारण भी यही है । बंकिम बाबू ने स्पष्ट लिख दिया—“तोमारई प्रतिमा गड़े मन्दिरे मन्दिरे ।” फिर, प्रतिमा-भंजक मुसलमान और प्रतिमा-फोड़क हिन्दू आपस में एक दूसरे का सिर न तोड़ें, तो करें क्या ?

और, इन सबका परिणाम यह हुआ कि इन दिनों, जहाँ देखिये गधे की ही चरचा है । कमरे में उसीकी तस्वीरें हैं और देवालियों में उसीकी मूर्तियाँ !

सिंह तो उनके डर से जंगलों में जा छिपे हैं । भला गर्दभ-नाद के सामने उनके सिंहनाद कौन सुने ? और जिसपर कृपा कर गर्दभ-महाशय ने अपनी दो-चार दुलित्तियाँ झाड़ दीं, वह फिर क्यों स्वर्ग जाय ?

उनके नखरों में जो मजा है, वह बीबी की झिड़कियों में कहाँ, और फिर आफिस के साहब बहादुरी की जूतियों में कहाँ ?

बादशाह सिकन्दर अपने साथ एक लाख गधों को लाया था। लेकिन, उधर रेगिस्तान में ही ऐसे-ऐसे ऊँटों से भेंट हुई, कि बेचारे गधों को लेने के देने पड़े। और यही वजह है कि आज भी इन्हें घाट से घर, और घर से घाट का रास्ता नापना पड़ रहा है।

इतने गुण होने पर भी, यह सम्भव नहीं प्रतीत होता कि हमारे साहित्यिक मनीषियों का ध्यान इस पर नहीं गया। महर्षि व्यास ने तो 'गदहा-पुराण' नामक एक पृथक ग्रन्थ रचकर अपनी गधा-भक्ति का परिचय दिया; आदि-कवि वाल्मीकि ने भी अपना रामायण में कमसे-कम पचास हजार बार से कम नहीं, इस शब्द का प्रयोग किया होगा। तुलसीदासजी तो इसपर न्यौछावर ही थे। उनकी प्रति चौपाई में ग और 'घ' ये दो अक्षर किसी-न-किसी रूप में अवश्य मिलेंगे ! सूरदासजी ने भी गधे की स्तुति में सवा-लाख पद कहे थे, जिसको पीछे, ईश्या से कृष्ण ने राधा-रानी के स्नान के लिये, जलकर हम्माम गरम किया। महाकवि केशव ने गधा-चन्द्रिका लिखी थी। बिहारी ने गर्धव-सतसई मतिराम ने रासभविलास, भूषण ने गधा-बावनी आदि पुस्तकों का रचना की, जिनमें प्रायः सब-के-सब अभी बिरही के नयनों-से अमुद्रित, प्रेमी के हृदय-से अप्रकाशित, और मनचाही रमणी के प्रणय-से अप्राप्य, काल की सन्दूक में दामकों से प्रतिक्षण चोषित-चर्वित हो रहे हैं।

शेक्सपीयर के नाटकों के कुल पात्र गधे से मिलते-जुलते तो हैं ही, अब तो प्रसिद्ध मनस्तत्व वैज्ञानिक फ्रायड का कहना है कि होमर भी गधों का चरवाहा करता था। और, गेटे का कुछ रचनाओं में भी गधे की जादू की बू आती है। अंग्रेजी-साहित्य में तो रोमान्टिसिज्म के बाद, 'गधा-वाद' का युग आया; परन्तु, आधुनिक हिन्दी-कविता में तो यह साथ ही साथ चल पड़ा है। सुना है, गुप्तजी भी इसपर कोई महा-काव्य लिख रहे हैं याँ लिखने को सोच रहे हैं, जाँ आजतक उनके सभी

काव्य-ग्रन्थों की सम्मिलित संख्या से आकार-प्रकार में दसगुना होगा। पन्तजी ने हाज ही में एक गधा खरीदा है, जिसका आद्योपान्त अध्ययन करेंगे वह और पालन-पोषण, चारे-पानी का बन्दोबस्त। करेंगे शान्ति-प्रियजी। निराजी भाषा में, 'निराजाजी' ने वाचस्पति पाठक को एक तगड़ी कविता रच कर, लिखकर, पढ़कर सुना दी है, जिसका नामकरण संस्कार किया पं० रामबिलास शर्मा ने—'गधा-दास।' और 'दिनकर' जी ने भी अपनी ओजभरी शैली में वह ओजभरी कविता सुनायी कि बेनीपुरीजी हिंसा-अहिंसा का भेद भूलकर चिल्ला उठे—“रानी, बन्दूक तो लाओ !”

और, इन सबों के सम्मिलित गुणानुवादों का शुभ परिणाम यह हुआ कि परमात्मा की जगह, यही आजकल हमारे जीवन का मुख्य-अंश हो गया है। स्थान-स्थान पर इसीकी चर्चा होती है, सभा-सोसा-इटियों में इसीकी प्रसंसा होती है और द्वार-द्वार पर इसीका कीर्तन होता है। कांग्रेस में भी इन्हीं का अधिकार है, सरकार में भी इन्हीं का हाथ है। जेल जानेवाले भी यही हैं और रायबहादुरी का खिताब पाने-वाले भी यही हैं। डिस्ट्रिक्टबोर्ड के मेम्बर भी यही बनते हैं, और असेम्बली के सदस्य भी। सभी जगह इन्हींका राज्य है, इन्हीं का बोल-वाला है। ईश्वर की तरह घर-घर इनकी पूजा होती है। सन्ध्या-वन्दन इनके नाम पर होता है और प्रभात में प्रभाती इन्हीं का जोग गाते हैं:—

हे प्रभु, गदहा क्यों न भयो ?

और, यही क्यों ? मेरे एक मित्र महोदय जब सन् तीस के स्वतन्त्रता-संग्राम में जेल गये थे, तब प्रतिदिन स्नान के बाद गदहा-गीता का सविधि पाठ किया करते थे। वह स्वयं कहा करते थे कि इसे भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गर्भ में ही पढ़ा दिया था।

गधे बड़े प्रेमी जीव होते हैं, यह जानकर आपको आश्चर्य न होना चाहिये। लेकिन उनकी प्रेम-जीला राधा-कृष्ण के समान, राज-भवन छोड़कर, इडेन गार्डन अथवा हाइड पार्क जैसे प्राकृतिक स्थानों में ही

अधिकार होती है। देहातों में उनकी आबादी ज्यादा तो है ही, शहरों में भी वे काफी तादाद में बस गये हैं और कलकत्ते-बम्बई जैसे नगरों में, अक्सर आप उन्हें इधर से उधर आते-जाते देखेंगे।

और, उस दिन, एकसमस की छुट्टियों में यूरोपियन-क्लब के सामने, बड़े मैदान में एक ऐसी ही कोतुक-क्रीड़ा देखकर मुझे बजात् माखन-चोर की रास-लीला याद आ गयी। मेरा तो अनुमान है कि श्री मद्-भागवतकार ने रासभ-लीला के स्थान पर ही, भूल से, रास-लीला का प्रयोग कर दिया और कालान्तर में वही प्रचलित हो गया, क्योंकि इस तरह की एक गलती रामायण-कर्त्ता से भी हुई थी, जिसके लिये उन्हें क्षमा मांगनी पड़ी—“लिखत सुधाकर, लिखिगा राहू !”

सचमुच वह जमाना बदल गया, जब गधे बुद्धू समझे जाते थे। आज-कल तो प्लैटफार्म पर गरमागरम स्पीचें झाड़ना उनके लिये बांयें हाथ का खेल है। बीबी चूल्हे को भाड़ में झोकता रहेगी और वे मस्त होकर सम्यवाद और समाजवाद को लेजिन की कब्र से निकाल कर मार्क्स के पिरामोड पर फेंकते रहेंगे। और, साहित्य-सम्मेलन में तो, मत पूछिये, उन्हीं का बोलवाला रहता है। बिना उनके कवि सम्मेलन रंग ही नहीं पकड़ता नाना बाहन, नाना वेशा ! शिवजी की बरात, अपनी आँखों से देख लीजिये।

और, तब उनके मुखारविन्द से संगीत के तीनों सप्तक तथा बारहों श्रुतियों का आनन्दरस पान कीजिये। अनेक प्रकार के स्वर, और उतनी ही तरह की लय ! सुनते-सुनते आप पानी न मांगने लगें, तो, उन्हें पान खिला दीजियेगा। इससे ज्यादा आप कर ही क्या सकते हैं ?

और इसी तरह की एक सभा में, अपने जाति-भाइयों द्वारा मैं भी घसीटा गया हूँ, उनके समान, आवाज पैदा करना तो मेरे भाग्य में नहीं, हाँ, पत्थर का कलम से कुछ लिख लेने की कोशिश जरूर की। पहली हा जाहन में यह—“जो, गधे !

कितने तुम सीधे और सच्चे !

लेकिन, देखा, यह तो ठीक नहीं हुआ। आगे तुक ही नहीं मिलती। फिर, बेतुकी ही उड़ायी।

व्योम और आकाश, अधिवास तुम्हारा भूगोल !

नक्षत्र, तुममें भाव, उच्छ्वास, वसन्त, उर्वशी, तुम।

शशि, वेदना।.....

किन्तु यह तो छायावाद से भी गूढ़ रहस्यवाद होता जा रहा था। मैंने प्रवाह रोककर दूसरी तरफ ले जाना चाहा—“तुम अनन्त के चिर-किशोर, हे चिर-कुमार, हे चिरनूतन !” कि सभा ही भङ्ग हो गयी और मेरा कण्ठ गद् गद् हो गया। मैंने कहा—‘हाँ !’

और यह भी सच है कि बिना गधे पर चढ़े गधे का जन्म छूटता भी नहीं। आपकी योनि बदली न हो, तो आश्चर्य नहीं; क्योंकि एक-दो नहीं, कुल चौरासी-लाख योनियाँ हैं। देवता-गण भी जब सींग तुड़वा कर बछड़ों में शामिल होने के लिये व्याकुल हैं, तब मनुष्यों की बात ही क्या? गोस्वामी जी ने तो साफ कह दिया है—“बड़े भाग रासभतन पावा !” और पहली जनवरी को भगवान ने भी अपने ‘बैकुण्ठ टाइम्स’ नामक पत्र में ‘स्वर्गाय समाचार, शीर्षक से एक अग्रलेख-लिखकर घोषित किया है कि कलिक अवतार के बाद ही उनका सुप्रसिद्ध गर्दभा-वतार होगा, जिसके लिये मर्त्यलोक-वासियों को अभी से तैयारी शुरू कर देनी चाहिये, नहीं तो फिर, न ‘डामिनियन स्टेट्स’ ही मिलेगा और न ‘फेडरल’ शासन ही, पूर्ण स्वाधीनता का प्रदत्त तो यों भी खटाई में फूल रहा है।

गधे की सवारी में जो मजा है, वह घोड़े, हाथी, रेल, जहाज, ऐरोप्लेन आदि में कहाँ? यकीन न हो, तो आगा खॉ से पूछिये या जयपुर के कमसिन कुमार से ही। विजायत में तो उस्ताद हैं ही, जब मुसोलिनी इसपर सौ जान से आशिक है और कर्नल लिण्डबर्ग अपना हवाई जहाज तोड़ने पर उतारू हो गया। अभी हाल में हालीउड में भी इनका प्रवेश हुआ है और प्रोटागावों से लेकर—“तक इनका व्यवहार करने

लगी हैं; और वह दिन दूर नहीं जब वह हवा हिन्दुस्तान की अभिनेत्रियों को भी लग जाय ! फिर कहां नाजुक बदन, पतली कमर, और गधे की सवारी, छिः ! छिः ! क्या अफ्रिका से बनमानुष नहीं मंगाये जा सकते ? यह भी शौक है ! फिर भी मेरा अपना विचार है कि कुछ शरीफ आदमी अगर इसको इस्तेमाल करें, तो आज ही 'बर्मा-शेल' का दिवाला निकल जाय ।

यह लेख लिखकर मैंने जो अपने एक दोस्त से दिखलाया तो वह अजीब-सा चेहरा बनाकर बोले—“यार तुम भी अजायब घर में रखने लायक” मैंने कहा—“क्या दरियाई घोड़ा” ?”

“नहीं, जी !” वह खिलखिलाकर हँस पड़े—“इतना भी नहीं समझे,” गधे ।”

